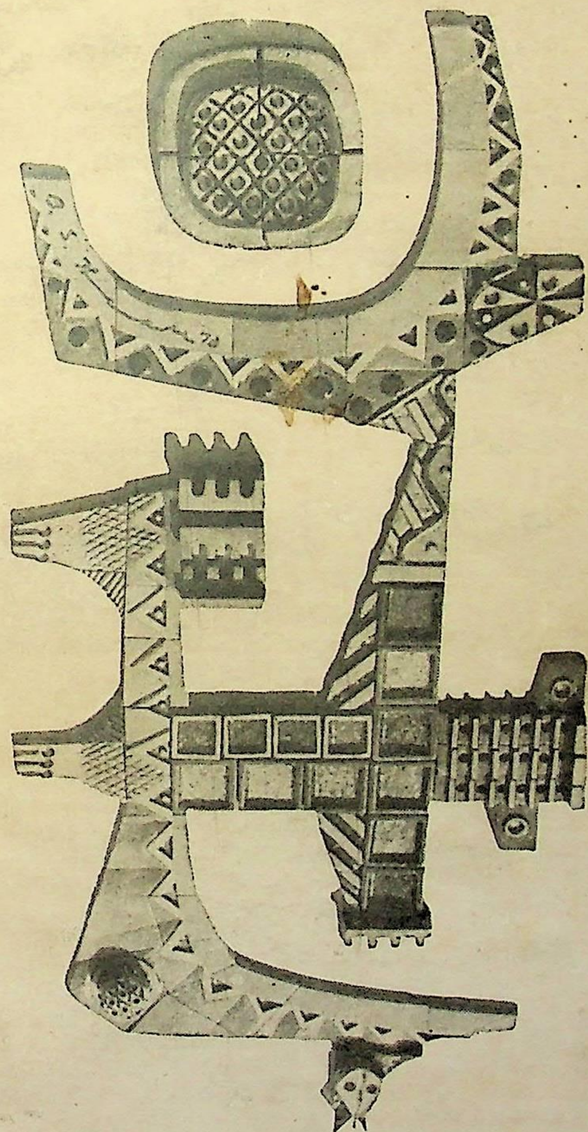
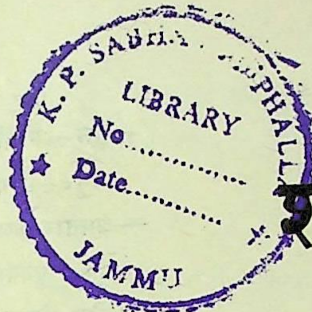
४८

शीराज़ा

हिन्दी



जम्मू एण्ड कश्मीर अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू



४८

द्विमासिक

शीराज़ा

हिन्दी

सम्पादक : रमेश मेहता

प्रमुख सम्पादक : मुहम्मद यूसुफ टेंग

वर्ष : १५ / अंक ४ (जनवरी १९८०) ; सम्पादकीय पत्र व्यवहार : रमेश मेहता, सम्पादक : शीराज़ा हिन्दी, जे० एण्ड के० कल्चरल अकादमी, नहर मार्ग, जम्मू ;

फोन : ५०४०   यह अंक : दो रुपये   वार्षिक शुल्क : दस रुपये

अनुक्रमणिका

लेख

———

● 'शीराज़ा' नियमित रूप से मिल रही है। आपके कुशल सम्पादन की दाद देनी पड़ेगी। बहुत अच्छी सामग्री आप इसमें दे रहे हैं। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

—डॉ० श्याम सिंह शशि

अनुसंधान, डी-५१, विवेक विहार, दिल्ली—११००३२

● शीराज़ा 'कविता विशेषांक' मिला तो जैसे नई खुराक मिली—इधर बहुत देर से कुछ पढ़ने को नहीं मिल रहा था—मान्यता प्राप्त पत्रिकायें एक रूटीन सी बन चुकी हैं—सो सारी बोरियत कुछ दिन उतर सी गई—कवितायें बहुत छू न सकीं। चन्द्रकान्त देवाताले की **एक साबुत घर के लिए**—कविता···बहुत देर तक दिमाग़ में रही—शाँत जी बर्फीली छायाओं के रोमानी दर्द से उठकर रेत के आकाश में तारे का दर्द झेलने की बात करते हैं तो मुझे अनायास ही असंख्य ज्योतियुक्त कणों की याद आती है जो न तारे हैं न रेत बस बहते हुए ज़र्रे हैं—और दर्द की भाषा नहीं समझते सिर्फ बहते और मिटते जाते हैं—काश ! कोई उन्हें भाषा दे···दर्द समझाये।

—महाराज कृष्ण शाह

देना बैंक, श्रीनगर

———

विचार

शोध की प्रकृति और हमारा जीवन

—डॉ० शशिभूषण सिंहल

साहित्य के प्रयोजन या उसकी उपयोगिता पर विचार करते हुए कई विचित्र एवं उल्लेखनीय बातें ध्यान में आती हैं। वास्तव में, शोध अपनी प्रारम्भिक दशा में निष्प्रयोजन होता है या ऐसा दीख पड़ता है। शोध में किसी रचना अथवा विषय के बनने की प्रक्रिया पर विचार किया जाता है। विज्ञान के अन्तर्गत जो शोध-कार्य होता है, उसमें वैज्ञानिक के सामने रचना-रूप में प्रकृति रहती है। वैज्ञानिक, शोध के अन्तर्गत प्रकृति के रहस्यों को उद्घाटित करता है। जैसे, न्यूटन ने पेड़ से गिरते हुए सेब को देखकर व्याख्या की थी कि पृथ्वी में गुरुत्त्वाकर्षण है। यह रहस्य जब उद्घाटित हुआ होगा, इसका तत्कालीन उपयोग ध्यान में सम्भवत: नहीं आ पाया होगा। किन्तु, हम देखते हैं कि आगे चलकर धीरे-धीरे यह शोध जब व्यावहारिक जीवन से गहराई से जोड़ा गया तब इसके अनेकानेक लाभ समाज को हुए। इसी प्रकार चन्द्रलोक की यात्रा, मंगल लोक सम्बन्धी अनुसन्धान आदि पर जो धन और साधन व्यय किये जा रहे हैं, वे सब इस समय निरर्थक से जान पड़ें तो आश्चर्य नहीं। ये किसी न किसी प्रकार, कहीं न कहीं, हमारी प्रकृति और जीवन के रहस्यों को उद्घाटित करने में समर्थ हैं, और ये अन्तत: शनै:-शनै: तथ्यों की एक शृंखला उद्घाटित करके हमारे लिए बड़ी उपयोगी बातें प्रस्तुत कर सकते हैं।

अब हम साहित्य पर आते हैं। साहित्य को दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुओं के अन्तर्गत गिनना उचित न होगा क्योंकि साहित्य से होने वाले लाभ को रुपयों-पैसों से नहीं आंका जा सकता। अन्न का उत्पादन करने से या कारखानों में वस्तुएं बनाने से जो लाभ होता है, उससे सर्वथा भिन्न साहित्य से प्राप्त होने वाला 'लाभ' अथवा आनन्द है। साहित्य के पठन-पाठन से तात्कालिक व्यावहारिक लाभ भले ही न हो, किन्तु उसके अध्ययन से जो लाभ होता है वह बड़ा सूक्ष्म और अपेक्षाकृत स्थायी होता है। उसे संक्षेप में इस प्रकार गिनाया जा सकता है—

१. जिस जीवन को हम जीते हैं उसके विशेष संवेदनायुक्त प्रसंगों को पुन: प्रस्तुत करके साहित्य उनमें हमारा मन रमाता है। इस विधि से हम जीवन का पुन: एक नए स्तर पर रसास्वादन करते हैं। दूसरे शब्दों में साहित्य के द्वारा हमारे भावों का व्यायाम होता है।

२. जीवन के सूत्र इतनी दूर-दूर तक और इतनी गहराई में फैले हुए हैं कि उन्हें ठीक-ठीक समझ पाना हमारे लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। ऐसी दशा में साहित्य जीवन का एक अर्थ प्रस्तुत करता है। उस अर्थ को पाकर जीवन को हम अधिक गहराई से समझते हैं, और उसे जीने की नई प्रेरणा और स्फूर्ति लेकर चलते हैं।

शोध के स्वरूप-विवेचन सम्बन्धी किसी संगोष्ठी में एकाएक एक रोचक प्रश्न पूछा गया। आरम्भ में लगा प्रश्न बस रोचक ही है, किन्तु ज्यों-ज्यों इस पर विचार किया जाता रहा और इसके उत्तर खोजने के प्रयत्न किए गए, त्यों-त्यों अनुभव हुआ कि प्रश्न महत्त्वपूर्ण है और शोध के स्वरूप के स्पष्टीकरण में विशेष सहायक भी। प्रश्न था—पी-एच० डी० आदि उपाधियों के लिए किए गए शोधकार्य पर जब परीक्षक उपाधि देने की संस्तुति करता है, तो अंग्रेज़ी भाषा में लिखता है 'इट इज़ ए पीस ऑव रिसर्च' (*It is a piece of research*)। इस उक्ति में 'पीस' शब्द का क्या अर्थ है? इसे हिन्दी में शोधांश कहें या आंशिक शोध? क्या शोध का कोई अंश होना सम्भव है; यदि ऐसा सम्भव है तो वह अंश कैसा और कितना है?

प्रश्न को लेकर दिलचस्प और गरमागरम बहस छिड़ गई। पहले तो विवाद हुआ कि 'पीस ऑव रिसर्च' उक्ति का अनुवाद 'आंशिक शोध' ठीक रहेगा अथवा 'शोधांश? इन दोनों अर्थों का दो वक्ताओं ने अलग-अलग समर्थन किया। विवाद के उपरान्त निष्कर्ष उभरा कि 'आंशिक शोध' अनुवाद भ्रामक है। इस कथन से लगता है, मानो कार्य की दृष्टि पूर्ण नहीं है; केवल आंशिक दृष्टि से ही शोध किया गया है और शेष दृष्टि कुछ और रही है। यह सम्पूर्ण शोध नहीं है। दूसरी ओर 'शोधांश' अधिक उपयुक्त जान पड़ता है, क्योंकि इसमें जो कुछ किया गया है शोध ही है, उसमें किसी अन्य प्रकार की दृष्टि का समावेश नहीं है। यह जो कुछ प्रस्तुत है, वह किसी विशद शोध-योजना का अंग या अंश ही है। अत: उसे शोधांश कहना ठीक होगा।

यह विचार अभी ठीक ठीक प्रतिपादित भी नहीं हुआ था कि एक वक्ता ने अंग्रेज़ी की उपर्युक्त पदावली और उसके किसी भी हिन्दी अनुवाद को अस्वीकार करते हुए बलपूर्वक स्थापना की कि इस उक्ति में 'पीस' शब्द का प्रयोग सर्वथा निरर्थक है। इस प्रकार के अनेक निरर्थक शब्दों के प्रयोग की परिपाटी अंग्रेज़ी भाषा में है। उस परिपाटी को दृष्टि में रखते हुए ऐसे शब्दों को गम्भीरतापूर्वक लेने की आवश्यकता नहीं है और न ही उनके किसी अनगढ़ हिन्दी अनुवाद की अपेक्षा है। उन्होंने उदाहरण दिये कि अंग्रेज़ी में आर्टिकल 'ए, एन, दी' का प्रयोग होता है। जैसे, अंग्रेज़ी में कहते हैं ए मैन, एन आंट, द विन्ड। इन शब्दों का यदि उक्त दृष्टि से हिन्दी में अनुवाद करने का आग्रह किया जाए तो अर्थ होंगे—एक आदमी, एक चींटी, वह हवा! यह सब अंग्रेज़ी मुहावरे का भोंडा और बेतुका हिन्दी अनुवाद है। इसी प्रकार

'पीस' शब्द अनेक स्थलों पर केवल परिपाटी के तौर पर प्रयुक्त होता है। इसका कोई विशिष्ट अर्थ नहीं होता। प्राय: हम लिखते और कहते हैं 'आई हैव एन अर्जेण्ट पीस ऑव वर्क एट होम' या 'आई हैव टू गिव यू ए पीस ऑव इन्फर्मेशन'। इन कथनों का सीधा-सादा अर्थ क्रमश: है, मुझे घर पर आवश्यक कार्य है तथा मुझे आपको कुछ सूचना देनी है। यदि इनका अनुवाद इस प्रकार किया जाए कि मुझे घर पर आवश्यक कार्यांश है या मुझे आपको सूचनांश देना है, तो ये कथन कितने बेसिर-पैर के और भद्दे बन पड़ेंगे !

साथ ही उन्होंने कहा कि शोध की अपनी एक दृष्टि और पद्धति है, या यों कहें कि शोध-कार्य की एक खास प्रवृत्ति है। अत: किसी दृष्टि, पद्धति या प्रवृत्ति को हम जातिवाचक की अपेक्षा भाववाचक संज्ञा मानें तो अधिक उचित होगा। भाववाचक संज्ञा में बोध होता है, अनुभव होता है, दृष्टि होती है किन्तु परिणाम नहीं होता। उसका वजन नहीं किया जा सकता, टुकड़े नहीं किए जा सकते और गिनती नहीं की जा सकती। जैसे, लालसा, पीड़ा, गहराई, बचपन, बुद्धिमत्ता आदि संज्ञाओं के अंश की कल्पना नहीं की जा सकती ; उसी प्रकार शोध की दृष्टि या प्रवृत्ति अपने आप में सम्पूर्ण है, उसके खण्ड या अंश की कल्पना नहीं की जानी चाहिए। उदाहरण के तौर पर, यदि बूंद पर शोध किया जाता है तो वह शोध है और सागर पर किया जाने वाला शोध भी शोध है। दोनों की दृष्टि, प्रवृत्ति, प्रक्रिया तथा उपलब्धि समान है। इन्हें बूंद का शोध और सागर का शोध कहना, या एक को शोधांश या दूसरे को सम्पूर्ण शोध कहना निरर्थक होगा।

अन्य वक्ता ने कहा, 'पीस' शब्द का अर्थ यहां है एक नमूना। प्रस्तुत कोई भी शोध-कार्य, शोध-प्रवृत्ति और प्रक्रिया का परिचायक या नमूना है। अत: यह अर्थ लेने पर 'पीस' शब्द विशिष्ट अर्थ रखता है और यह शोध की मूल प्रवृत्ति के विरोध में भी नहीं पड़ता।

तीसरे वक्ता ने एक अन्य अर्थ को स्पष्ट किया। उनका कहना था शोध-कार्य की कोई सीमा नहीं है, यह तो चलता ही रहेगा। इसमें अनवरतता का भाव है। यदि 'अनुसंधान' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ किया जाए तो 'अनु+संधान' का आशय है, अनवरत संधान, निरन्तर खोज। शोध का जो अनवरत क्रम चल रहा है, उसमें हम जैसे अनेकानेक व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि और सामर्थ्य से कार्य कर रहे हैं। यही नहीं, अनेक व्यक्ति एक ही विषय पर बार-बार शोध करते हैं, अथवा एक ही व्यक्ति अनेक विषयों पर शोध-कार्य करता रहता है। शोध में सातत्य का भाव है। इसलिए कोई भी शोध-कार्य शोध के अनवरत क्रम का एक अंश-मात्र है। उसे यदि शोधांश कहा जाए तो क्या हानि है ? इसी के साथ शोधार्थी यदि अपने परिश्रम या उपलब्धि को शोधांश कह कर प्रस्तुत करता है तो यह उक्ति उसमें अपेक्षित विनय-भाव की ही द्योतक है।

परिचर्चा के बाद मेरे ध्यान में यह प्रश्न बना रहा। मैंने अंग्रेज़ी शब्दकोश की शरण ली। शब्दकोश में प्रमुख नौ अर्थ मिले जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—'किसी ठोस पदार्थ का टुकड़ा ; प्रकार , उदाहरण या नमूना मात्र ; कोई रचना ; सेट (एक ही प्रकार के परस्पर

पूरक वस्तु-समूह) का एक नग ; सिक्का ; बन्दूक ; किए जाने वाले कार्य की सुनिश्चित मात्रा ; यौगिक या अनेक के योग से बनी वस्तु का एक अंग।' इन अर्थों में से कुछ अपने प्रसंग के जान पड़े।

कुछ समय बाद अंग्रेज़ी के एक विद्वान् से चर्चा हुई। उनका मत था कि 'ए पीस ऑव रिसर्च' में 'पीस' शब्द का अर्थ है 'वर्क' या 'समथिंग मेड'। इसका हिन्दी में अनुवाद करें तो हम कहेंगे, कार्य या कृति। उन्होंने उदाहरणस्वरूप शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक हेमलेट की उक्ति उद्‌धृत की—'वाट ए पीस ऑव वर्क' इज ए मैन' (*What a piece of work is a man*) उनके अनुसार, उक्ति में 'पीस ऑव वर्क का अर्थ है 'मास्टर पीस' (मेड बाई गॉड)। यानी, मनुष्य विधाता की अनुपम कृति है। 'वर्क' का अर्थ यहां है 'वर्कमैनशिप' (कृतित्व)। वर्क शब्द के अनेक अर्थों में से एक अर्थ है : कार्य के परिणामस्वरूप उपलब्ध कृति (*That which is produed by work*) इसी के साथ उन्होंने बताया 'अर्जेन्ट पीस ऑव वर्क' मुहावरे में 'पीस' शब्द का सही प्रयोग नहीं है। वर्क या कार्य का कोई 'पीस' नहीं होता।

इस विवेचन के उपरान्त हमारे सन्दर्भ में 'पीस' का अर्थ हुआ शोध-कार्य। संयोग की बात है, शोध प्रबन्धों पर उपाधि प्रदान करने के लिए संस्तुति करते समय हम परीक्षक सहज भाव से हिन्दी में लिख जाते हैं कि अमुक का यह शोध-कार्य है और इस पर उसे अमुक उपाधि मिलनी चाहिए। यह सब विचार करके रोचक विस्मय हुआ कि हम लोग अनजाने ही अंग्रेज़ी की इस उक्ति का समानार्थी भाव ठीक-ठीक, हिन्दी में प्रयोग करते आ रहे हैं। इतने पचड़े के बाद अपनी बात को जैसे-तैसे पहचाना। क्या ऐसा नहीं रहा, कि लड़का बगल में, ढिंढोरा शहर में। तो क्या यह सब व्यर्थ का मानसिक व्यायाम था ?

बात ऐसी नहीं है। जो बना हुआ है, हमारे सामने है, जो हमें उपलब्ध है। यानी पदावली 'शोध-कार्य' बनी कैसे है, इसके पीछे कौन से तत्त्व कार्य कर रहे हैं और इसकी बनावट में क्या संगति या असंगति है, इन तथ्यों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। बल्कि यों कहना उचित होगा कि इन तथ्यों को जानना एक चुनौती है और उस चुनौती को स्वीकार कर उत्तर प्राप्त करना बौद्धिक प्राणी का सहज-सिद्ध अधिकार और कर्त्तव्य दोनों हैं। यही दूसरे शब्दों में शोध-प्रवृत्ति है।

इस समस्या पर मेरा मनन रुका नहीं। 'ए पीस ऑव रिसर्च' का हिन्दी में सहज अनुवाद शोध-कार्य है, यह तो ठीक है। पर यदि 'पीस' का अर्थ अंश या पक्ष मानकर भी चलें, तो क्या यह शब्द कोई उपयोगिता रखता है ? और, क्या इससे शोध के स्वरूप और प्रवृत्ति को स्पष्ट करने में कोई सहायता मिलती है ?

शोध के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए 'आलोचना' के स्वरूप को जानना अत्यावश्यक है। साहित्यिक चिन्तन में प्रायः ये दोनों चिन्तन-पद्धतियां परस्पर सहयोग करती हैं और कहीं-कहीं घुल-मिलकर एक भी हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में दोनों को सर्वथा अलग करके कहने-बताने का प्रयत्न कर मानो हम उस विवेचन को लंगड़ा बना देते हैं और उसे शोध अथवा

आलोचना के सीमित खानों में बलपूर्वक बांट कर रख देते हैं। आशय यह है कि शोध और आलोचना को यहां नितान्त पृथक् करके स्पष्ट करने का उद्देश्य केवल उन्हें समझना ही है; उन्हें परस्पर अजनबी बनाना नहीं है। यह हम सब अनुभव करते ही हैं कि किसी विषय से सम्बन्धित सूक्ष्म चिन्तन को शब्दों में स्पष्ट करना और सही-सही बांधना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य रहता है। शोध और आलोचना के कार्य-क्षेत्र को दो टूक ढंग से पृथक्-पृथक् करके देखना-दिखाना इसी प्रकार की समस्या है। अस्तु !

शोध और आलोचना दोनों कार्य किसी एक ही विषय पर किये जा सकते हैं। विषय एक होते हुए भी दोनों की दृष्टि और कार्यक्षेत्र भिन्न और पृथक् होंगे। (विचार का वह) विषय बन चुका है और अब अध्ययन के लिए प्रस्तुत है। विषय के बनने की जो प्रक्रिया है यह शोध-कार्य का क्षेत्र है, और विषय का बना हुआ प्रस्तुत रूप आलोचना का विषय है। दो टूक और सरलतम ढंग से इन दोनों का भेद-दर्शन इसी प्रकार किया जा सकता है। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट की जा सकती है। जैसे—विषय है 'सूर का काव्य'। इसका अध्ययन दोनों दृष्टियों से सम्भव है। सूर का काव्य रचा जा चुका है और प्रस्तुत है। इस काव्य का अर्थ क्या है, विश्लेषण द्वारा उसे स्पष्ट करते हुए समझना-समझाना, तथा साहित्यिक और जीवन मूल्यों की परम्परा में उसका स्थान खोजना—यह सब आलोचना का कार्य-क्षेत्र है।

शोध का क्षेत्र इससे भिन्न है। शोधार्थी के सामने सूर का काव्य प्रस्तुत है। अब उसे इसकी रचना-प्रक्रिया, अथवा इस विषय के तन्त्र को खोजना है। संक्षेप में, उसे देखना है कि रचयिता सूर का व्यक्तित्व कैसे बना, सूर का युग कैसा था, सूर को कौन सी साहित्यिक परम्परा थाती में प्राप्त हुई थी, सूर का जीवनवृत्त क्या है, उससे सूर के व्यक्तित्व और मनोविज्ञान पर क्या प्रकाश पड़ता है, सूर ने कितना और कैसा जीवन देखा था और उनकी दृष्टि क्या थी और सूर की जीवन सम्बन्धी अनुभूति किस प्रकार रचना-रूप में अभिव्यक्ति प्राप्त कर सकी। तात्पर्य है, शोध-कार्य में देखना होगा कि सूर का व्यक्तित्व कैसे बना और उस व्यक्तित्व से उनका काव्य कैसे बना।

उक्त विवेचन के आलोक में स्पष्ट होता है कि आलोचना में, स्थित विषय का विश्लेषण, विवेचन और मूल्यांकन रहता है। दूसरी ओर शोध में, रचयिता से लेकर अन्तिम परिणति, रचना तक 'तन्त्र' का प्रसार है, और यह सब कुछ रचना में निहित है। रचना वर्तमान में है और रचना-प्रक्रिया विगत का विषय बन चुकी है। इस समूची प्रक्रिया या इस प्रक्रिया के किसी अंश का शोध में अध्ययन किया जाता है। यह स्पष्ट हो जाने पर दो प्रमुख बातें और उभरती हैं। पहली, रचना-प्रक्रिया का सूत्र अत्यन्त दीर्घ एवं सूक्ष्म है। इसका अध्ययन प्रायः क्रमशः ही हो सकता है। इसलिए किसी शोध-कार्य में रचना या विषय की रचना-प्रक्रिया का एक बार में एक अंश ही प्रायः उद्घाटित हो पाता है। जैसे सूर काव्य को ही लें, तो सूरपूर्व काव्य-परम्परा, सूरपूर्व ब्रजभाषा-प्रयोग, सूर का युग, सूर का जीवनवृत्त, सूर का

अन्धत्व, सूर का मनोविज्ञान, सूर के समसामयिक, सूर की जीवन-दृष्टि, सूर पर पुष्टि सम्प्रदाय का प्रभाव, सूर की अनुभूति-क्षमता, सूर का शिल्प, सूर का अलंकार प्रयोग, भाषा-प्रयोग, छन्द-प्रयोग आदि पक्ष उद्घाटित होते हैं। सूर के काव्य के तन्त्र के अनेकानेक चरण हैं जो परस्पर कार्य-कारण सूत्र में क्रमशः परस्पर अनिवार्य रूप से निबद्ध हैं। एक बिन्दु दूसरे को स्पष्ट करता है।

दूसरी बात है कि शोध में विषय या विषय से सम्बन्धित किसी अंग का अध्ययन उसके 'स्थितिशील' रूप का नहीं होता है वरन् किसी भी अंग का अध्ययन उसके गतिशील रूप या उसकी रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में होता है। रचना-प्रक्रिया में 'प्रक्रिया' क्रिया का द्योतक पद है। क्रिया में गति होती है और गति की अवधारणा काल के आयाम में होती है। तात्पर्य है, शोध का विषय काल के आयाम में, गतिशील रूप में, प्रक्रिया के अंग-रूप में देखा जाता है। उदाहरण से स्पष्ट करें तो कहेंगे कि जैसे 'सूर के काव्य में अलंकार' विषय है। इसमें शोध के अन्तर्गत देखना होगा कि सूर का कवि रूप में व्यक्तित्व कैसे बना है और इस व्यक्तित्व की काव्य-रूप में परिणति किस प्रकार हुई है, साथ ही सूर की अलंकार-योजना का सूर की काव्य-रचना में क्या योगदान है। सूर का व्यक्तित्व, अलंकार तथा काव्य, यहां एक-दूसरे की रचना में संलग्न हैं और एक गति के अंग-रूप हैं। यदि इन तीनों विषयों को एक क्रम में निकट रखकर देखें तो विचार-विवेचन की सीधी रेखा बनती है, जिसके युग, व्यक्तित्व, मनोविज्ञान, अनुभूति, शिल्प, अलंकार आदि विविध बिन्दु हैं, जो परस्पर आश्रित और सम्बद्ध हैं। इस आधार पर कह सकते हैं कि शोध का विषय किसी विकसनशील प्रक्रिया का अंग बनकर आता है। सूत्र रूप में, शोध, विकास-रेखा पर विद्यमान बिन्दु का अध्ययन है।

यह बात अधिक स्पष्ट करने के लिए अन्य गोष्ठी में उठाए गए प्रश्न का उत्तर विचारणीय है। हमारी शोध सम्बन्धी उक्त धारणा को आधार मानकर वहां एक शोधार्थी शोध के स्वरूप पर अपना प्रपत्र प्रस्तुत कर रहा था। उससे प्रश्न किया गया कि क्या शोध के अन्तर्गत रचना का कथ्य भी आता है। प्रश्न पर शोधार्थी कुछ सकपका गया और उसने कुछ संशय से उत्तर दिया कि शोध में कथ्य भी आ सकता है। किन्तु, वह अपने उत्तर की टीका-नहीं कर सका।

हमारी शोध सम्बन्धी धारणा के आलोक में उक्त जिज्ञासा का सटीक उत्तर इस प्रकार होगा : शोध का क्षेत्र है किसी रचना के 'तंत्र' का विधिवत् उद्घाटन। उदाहरणार्थ, प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य पर शोध-कार्य हो रहा है। उपन्यास पर विचार करते समय उसका कथ्य विचारणीय है क्योंकि कथ्य भी तन्त्र का अंग है।

इस उत्तर पर एक नई जिज्ञासा की जा सकती है कि क्या कथ्य आलोचना का विषय नहीं बन सकता। यदि वह आलोचना का विषय भी बन सकता है तो शोध और आलोचना की कथ्य सम्बन्धी दृष्टियों में क्या भेद होगा?—उत्तर है कथ्य आलोचना का विषय भी हो सकता है। पर आलोचना और शोध दोनों की दृष्टियां इस विषय पर भिन्न होंगी। उक्त

उदाहरण के अनुसार, प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथ्य की आलोचना करते समय प्रेमचन्द के कथ्य की परिकल्पना को समझने का प्रयत्न किया जाएगा और बताया जाएगा कि वे कथ्यों में जीवन सम्बन्धी क्या दृष्टि रखते हैं तथा प्रचलित मान्यताओं के आलोक में वे किस कोटि के हैं।

अब यही विषय शोध की दृष्टि से विचारणीय है। शोध में देखा जाएगा कि प्रेमचन्द का कथ्य कैसे बना है। उसे बनाने में परम्परा, प्रेमचन्द के युग तथा उनकी प्रतिभा का कितना और किस प्रकार का योगदान है। फिर देखना होगा कि इस कथ्य का प्रेमचन्द के उपन्यासों की रचना में क्या योगदान है। इस प्रकार शोध में, रचना-प्रक्रिया के क्रम में कथ्य विचारणीय विषय है। वह किन तत्वों से बना है और आगे किस विषय की रचना में सक्रिय है; वह स्वयं बनता है और फिर किसी को बनाता है। यह बनने-बनाने का क्रम शोध सम्बन्धी दृष्टि के लिए अनिवार्य है। अब सूत्र-रूप में कह सकते हैं कि आलोचना का विषय स्थित होता है, और शोध का विषय एक गतिशील प्रक्रिया का अंग या अंश होता है।'

शोध का विषय रचना-रेखा का बिन्दु है। रचना-रेखा सुदीर्घ है और बिन्दु उसका अंग या अंशमात्र है। एक ओर शोध का कोई अंश है, ऐसा मानने पर गम्भीर आपत्ति है, और दूसरी ओर, शोध करते समय हम रचना-विशेष के अंश का ही उद्घाटन कर पाते हैं। दीख पड़ने वाली इस विषमता का हल शोध के दो आयामों को पृथक् रूप से स्वीकार करने पर निकल सकता है। शोध का एक आयाम है **प्रवृत्तिमूलक** और दूसरा है, **संदर्भमूलक**। प्रवृत्ति की दृष्टि से शोध एक दृष्टि है या क्षमता है; उसका कोई अंश नहीं हो सकता। जैसे आग, आग है। छोटी आग और बड़ी आग की कल्पना करके हम आग के मूल गुणों में कोई सुनिश्चित विभेद नहीं कर सकते। इसी प्रकार, शोध और शोधांश की बात छेड़ कर शोध की मूल प्रवृत्ति को छोटा या विखण्डित करना ही होगा।

अब शोध के सन्दर्भमूलक आयाम पर विचार करेंगे। शोध की प्रवृत्ति एक ही है, अविभाज्य है, यह माना। पर देखना है, विषय या रचना के संपूर्ण क्षेत्र के संदर्भ में किसी 'शोध-कार्य की उपलब्धि की स्थिति क्या है?' शोध किसी वस्तु या विषय में निहित रचना–रहस्य के क्रमशः उद्घाटन का प्रयत्न है। इस विशाल विश्व में भांति-भांति की असंख्य रचनाएं हैं। उनके तन्त्र के उद्घाटन का प्रयत्न हो रहा है और होता रहेगा। जैसे, हम 'शेक्सपीयर के नाटकों में प्रस्तुत नारी' विषय पर शोध-कार्य करते हैं। इस नारी के अध्ययन से एक ओर शेक्सपीयर के मनोविज्ञान और उस मनोविज्ञान के निर्माता तन्तुओं के रहस्य के उद्घाटन की दिशा खुलती है, तो दूसरी ओर नारी पात्रों की भूमिका के योग से शेक्सपीयर की नाट्य कला की निर्मिति की प्रक्रिया स्पष्ट होती है। इस विषय को बृहत्तर सन्दर्भ में रखने पर मानव-जीवन रूपी रचना में नारी की भूमिका को समझते हुए हम जीवन के रहस्य की आंशिक व्याख्या करने में सफल हो सकते हैं। साहित्य, इसी प्रकार रचना और रचयिता के मध्य कारण-कार्य सम्बन्ध स्थापित करते हुए इनके मूलाधार, जीवन के रहस्य, को क्रम-क्रम से उद्घाटित करता चलता है।

साहित्य ही क्यों मानविकी, समाजविज्ञान और विज्ञान के क्षेत्रों में शोध का इसी प्रका का प्रयत्न चल रहा है। इन क्षेत्रों में शोध के अगणित विषय अगणित रचनाओं के तन्त्रों उद्घाटन में संलग्न हैं। ध्यान से देखें, तो अन्ततः ये सब रचनाएं किसी एक सम्पूर्ण रचना अंग या अंशमात्र हैं। इन अगणित अंशों के तन्त्र को उद्घाटित कर शोधार्थी उस मूल रचन के रहस्य तक पहुंचने का प्रयत्न कर रहे हैं। प्रश्न उठता है कि वह कौन सी मूल एकमा रचना है, जिसमें सभी रचनाएं सन्निहित हैं। उत्तर स्पष्ट है ; एकमात्र मूल रचना है सम्पूर्ण सृष्टि। सृष्टि ही वह रचना है जिसके अनेक अंग हैं और जिन अंगों को अनेक ज्ञान-विज्ञान विविध ढंगों से समझते-समझाते हैं। ज्ञान-विज्ञान के सीमित क्षेत्र और सीमित विषयों को लेकर शोध करते हुए हम उस एकमात्र रचना (सृष्टि) के रहस्य को उद्घाटित करते चलते हैं। ये सब शोध-कार्य खण्ड-खण्ड करके क्रमशः उसी मूल सत्य के साक्षात्कार की दिशा में गतिचिह्न हैं।

शब्द 'पीस' का अर्थ 'अंश' अनजाना जान पड़ने पर भी है बड़े काम का। इसके आश्रय से शोध की अनोखी गतिशील प्रवृत्ति ध्यान में आती है। हम देख चुके हैं, 'अंश' शब्द का शोध के सन्दर्भ में प्रयोग, शोध की प्रवृत्ति के विरुद्ध जान पड़ता है। इस शब्द में विभाजन की, अलगाव की, स्थिरता की गन्ध आती है। फिर भी शोध गतिशील प्रक्रिया के बिन्दु का अध्ययन करता है। शोध जिस 'खण्ड' का अध्ययन कर रहा है वह मूलतः अखण्ड ही है, और उस अखण्ड की दिशा में गतिशील है। अतः उस भाव की रक्षा करते हुए शोध के क्रम को स्पष्ट करने के लिए 'चरण' शब्द का प्रयोग सूझता है। चरण का अर्थ है, दिक्काल के आयाम में डग भरना। चरण शब्द में शोध की प्रवृत्ति और उसकी गति, दोनों तत्त्व विद्यमान हैं। जो भी शोध-कार्य होता है, वह शोध का एक चरण है। सार रूप में बात यह हाथ आई कि 'ए पीस ऑव रिसर्च' का अर्थ शोध-कार्य ही है, किन्तु पीस शब्द का एक अर्थ 'अंश' भी विचारोत्तेजक सिद्ध हुआ है। भले ही हम उसे उस रूप में न स्वीकारें, फिर भी शोध का विषय गतिशील प्रक्रिया का अंग होने के कारण प्रवृत्ति में शोध होते हुए भी, उपलब्धि में उसका (एक) चरणमात्र है।

———

कविता में विद्रोह

—अशोक जेरथ

आकांक्षित और चलित स्थिति के बीच के अवरोध को किसी भी क्रिया से दूर करने के भावबोध को विद्रोह की संज्ञा दी जा सकती है। निर्मल वर्मा राजनीतिक सन्नाटे को भेद कर शब्द देने को साहित्यिक विद्रोह कहते हैं तो किसी व्यवस्था विशेष के विरोध की बात को मुद्राराक्षस विद्रोह के रूप में लेते हैं। एक बात सत्य है कि विद्रोही स्वर क्रान्ति का प्रतीक रहा है; और क्रान्ति रूढ़िगत विचारों, व्यवस्था के बदलाव, परिवर्तन की बात कहती है। परिवर्तन किस का? हर आने वाली पीढ़ी बीते हुए समय के आदर्शों, आस्थाओं को नकार कर नया भावबोध लाना चाहती है जिसे मुद्राराक्षस सुधारवादी भावबोध की संज्ञा देते हैं। (विद्रोह और साहित्य पृ० २६) केशनी सिंह चौरसिया द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'विद्रोही पीढ़ी' के सम्पादकीय में साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, सूदखोरी, घूसखोरी, चोरी, डकैती, हिंसा आदि ही इस कलुषित व्यवस्था के आधारस्तम्भ बनाए गए हैं। इनके प्रति आक्रोश होना सहज ही है। यही आक्रोश विद्रोह बनकर इन रचनाओं में झलका है। भूखी पीढ़ी की संतप्त वेदना को अंगीकार कर कवि 'आमार वियतनाम' में रो उठता है तो कहीं भ्रष्ट व्यवस्था के नग्न नर्तन से आक्रोश में भर कर मुट्ठियां तान लेता है :—

क्या दिया तुमने? महज जयहिन्द
फ़कत फ़ाकाकशी, आंकड़े, बस आसमानी आंकड़े
और गुत्थमगुत्थई राशन की कसी कतारें
बेरोजगारी···

—केशनी प्रसाद चौरसिया

ऐसी रचनाओं को पढ़ कर अनेक बार प्रश्न उठता था कि क्या इन्हें चिरस्थाई और शाश्वत रचनाओं में स्थान मिलेगा या मात्र सामयिक समस्याओं की ओर संकेत कर इनके विद्रोह का उफान बुलबुले की भान्ति शान्त हो जाएगा। किन्तु लगता है कि आंकड़े व फ़ाकाकशी हमारी विडम्बना है और कतारों में खड़े होकर राशन का इन्तजार करना हमारी नियति जिसे पिछले कई दशकों से हम भोगते आ रहे हैं और आगे इससे नजात पा सकेंगे ऐसा सोचना ही हमें 'नाईटमेयर' के दुरूह जंगल में फेंक देता है।

कविता में विशेषकर परिवर्तन और आधुनिकता के नाम पर अनेक बाड़े सामने आए। इन सबने अपने अपने तौर पर अपने वाद विशेष को अति नवीनतम और आधुनिकता के करीब बताया है। जगदीश गुप्त ने ऐसे अड़तालीस नाम गिनाए हैं—अकविता, न कविता, शमशानी कविता, आक्रोश कविता आदि। नीज़ यह कि "हर नया कवि अपने दो-चार साथियों के साथ या अनेक बार अकेला भी अपने को अन्य कवियों से अलग घोषित करता है और इसके लिए पीढ़ियों के अलगाव, अन्तर तथा पारस्परिक विरोध का सिद्धान्त पेश करता है। ताज़ी पीढ़ी, सर्वथा युवक पीढ़ी, युवा पीढ़ी, पिछली पीढ़ी, बिचली पीढ़ी, बुज़ुर्ग पीढ़ी के अन्तर को अनेक तर्कों से सिद्ध करने की कोशिश की गई है।"[१]

गिरिजा कुमार माथुर उस कटुता की ओर संकेत करते हुए आगे लिखते हैं—"चूंकि व्यवस्था प्रतिष्ठानों के द्वार आज की कविता के लिए बन्द रहे हैं और इस नई भंगिमा को सामने लाने वाला कोई उपयुक्त मंच नहीं है, इसी कारण आज का कवि सीमित साधनों का उपयोग कर अपने को व्यक्त कर रहा है। फलस्वरूप उसकी कटुता और भी उभर कर सामने आई है। यह कविता उस स्वप्नभंग से उपजी है जिसे कवि से लेकर हर प्रबुद्ध व्यक्ति ने पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में भोगा है!"[२]

बाह्य स्थितियों के संघर्ष की जब बात आती है तो तीन विकल्प हमारे सामने उभर आते हैं—समस्याओं को समझ कर व्यक्ति उन्हें सुलझाने में प्रयत्नशील हो जाए, उन समस्याओं को नकारे या फिर उनसे कन्नी काट कर निकल जाए। कवि हृदय संवेदनशील रहा है जिसे क्षणिक घटनाओं ने प्रभावित किया है अतः बाहरी स्थितियों के संघर्ष से इन तीनों विकल्पों में से किसी एक को कवि ने चुना ही है। छायावाद में कवि विद्रोह न कर सका—या ऐसा कहा जाए कि खुल कर सामने न आ सका—कवि अन्तर्मुखी हो चुका था, जो विद्रोह और पलावन के बीच की स्थिति है। पर उसके बाद के कवियों ने अपनी वाणी को सब बन्धनों से मुक्ति दिलाकर समाज के कोने कोने में मुखरित किया। विद्रोह और क्रान्ति के नाम से जनकविता के स्वर को प्रचारित किया गया अतः छायावाद से प्रगतिशील यह स्वर प्रगतिवादी स्वर कहलाया। पर यह चरमबिन्दु नहीं था। यदि नाम भर से ही प्रगतिवादी स्थितियों को जन्म दिया जा सकता है तो इसके बाद सीमा समाप्त हो जानी चाहिए थी। पर नहीं! बौद्धिकता के साथ साथ तकनीकी दृष्टि से भी अनेक परिवर्तन आए—नये कवियों ने न केवल वैचारिकता के नये आयाम तलाशे अपितु उन्हें प्रचलित शैली में भी जड़ता नज़र आने लगी थी—तकनीकी दृष्टि से पहली बार एक बड़े पैमाने पर विद्रोह के स्वर उपजे—यह प्रयोगवाद था—नया बिम्ब विधान, नई प्रतीक योजना, नई उपमाएं आदि नई शैली के साथ उभरे। उसके साथ साथ ही काव्य को सम्पूर्ण नवीनतम परिधान प्रदान करने हेतु और अत्याधुनिक बनाने हेतु नई कविता का जन्म जैसे अनिवार्य हो गया। यह आने वाले समय में होने वाले विस्फोट के पहले की मौन

---

१. गिरिजा कुमार माथुर, आज की कविता—विद्रोह की भूमिका : पृ० ४०

२. वही : पृ० ४१

स्थिति थी जिसमें अन्दर ही अन्दर लावा घुल रहा था। इस घुलन में सामाजिक दबाव, कुण्ठा, अन्तर्विरोध, भूख, पीड़ा, रिश्वतखोरी, लालफीताशाही, भ्रमित वैचारिकता, अनैतिक आधारभूमि पर खड़ी राजनीति, दिखावा और नई पीढ़ी का रक्त उबलता रहा और फिर इस लावे के कण विस्फोट के साथ चारों ओर बिखर गए। यह विद्रोह की चरमसीमा थी। कविता कई हिस्सों में—कई बाड़ों में बट गई किन्तु केन्द्र बिन्दु एक ही रहा—व्यवस्था के विरोध में उमड़ता हुआ स्वर। किन्तु क्या वास्तव में यह स्वर हर समय तीक्ष्ण था और इसकी धार व्यवस्था को काटती रही ? साहित्य अकादमियों की चकाचौंध में, मेडलों और पुरस्कारों के आकर्षण में समय समय पर यह धार कुंद होती रही—या यूं कहा जाए कि जो व्यवस्था के साथ थे, वही सब से ज्यादा शोर करते रहे।

किसी लेख में पढ़ा था कि राज्याश्रय के पीछे भागने वाले ये लोग एक हाथ में विद्रोह का शंख तो दूसरे हाथ में आरती का थाल लिए व्यवस्था का विरोध करते करते स्वयं इसके अंग बन जाते हैं—व्यवस्था द्वारा जुटाए हुए प्रलोभनों से विद्रोह का पैनापन धीरे धीरे सिमिट कर कुंद हो जाता है। यह साहित्य फिर कहां खो जाता है ? कोई नहीं जानता···उसके विद्रोह की कीमत व्यवस्था ने अदा कर उसे खरीद लिया, बस इतना इतिहास भर उसके जानकारों के पास रह जाता है।

आपात्कालीन स्थिति ने स्याह और सफेद को हमारे समक्ष नंगा कर दिया है। मुखौटों में छुपे अनेक चेहरे पाठकों के समक्ष नग्न हो चुके हैं। वही कवि जो व्यवस्था के नाम पर विद्रोह की आग को बांटते थे हिम बन कर राजरानी के चरणों तले लौटने लगे। बेशर्मी की हद तो देखो आपात्कालीन स्थिति के बाद उन्हीं का स्वर उस स्थिति को निम्नता प्रदान करने लगा और इलज़ाम सम्पादकों के माथे पर मढ़ दिया गया। यह बात नहीं कि सम्पादक इस आक्षेप से अछूते हैं— रचनाकारों की रचनाओं को दबाव के नीचे तोड़-मरोड़ कर प्रकाशित कर व्यवस्था से वाहवाही लूटने का श्रेय उन्हें भी जाता है; पर प्रश्न यह है कि उन तथाकथित विद्रोही रचनाकारों ने उन सम्पादकों का मुखौटा उतारा क्यों नहीं ? यदि इस डर से कि उनकी रचनाएं प्रकाशित नहीं होंगी तो फिर विद्रोह कैसा ? विद्रोह समझौता नहीं मांगता। विद्रोह क्रान्ति की आवाज़ है जो व्यवस्था को झकझोर कर उन सब कुरीतियों, रूढ़ियों को निकाल देना चाहती है जिसके पीछे शोषण की क्रिया और भाव लिपटे हैं। इस दृष्टि से विद्रोह का स्वर सुधारवादी कहा जा सकता है।

पर क्या आधुनिक पीढ़ी द्वारा घोषित विद्रोह का दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा है ? साहित्य की शालीनता को आतंक और मोहभंग के नाम पर जितनी गलीज़ भाषा और नंगापन मुहैया किया गया शायद किसी भी समय हिन्दी साहित्य में नहीं था। हिन्दी साहित्य में कितनी भी गिरावट आई हो—कितने ही आक्षेप क्यों न इसने झेले हों पर इतना सस्तापन और गिरावट कभी भी इसने अंगीकार नहीं की। अपने आपको अति नवीन और अत्याधुनिक कहलाने की इच्छुक यह भारतीय बीटनिक पीढ़ी ढिंढोरा पीट कर व्यवस्था से टकराने के

प्रचार तक ही सीमित है—मात्र नाम और प्रसिद्धी की भूखी इस पीढ़ी ने क्रान्ति के नाम पर साहित्य को और दिया ही क्या है ?—मात्र नारेबाज़ी ; जो कदापि शाश्वत नहीं हो सकती।

रचना को कसौटी पर परखते हुए बाहरी वर की धार और पैनापन नहीं देखा जाता। "बाह्य स्वर कितना ही पैना तथा तीक्ष्ण क्यों न हो, आन्तरिक अनुशासन का निर्वाह बहुत आवश्यक हो जाता है। कविता की कसौटी उसकी शृंगारिकता उसकी नवीनता, आधुनिकता, समसामयिकता, विज्ञान, राजनीति, क्रोध और विद्रोह नहीं अपितु इसकी कसौटी आन्तरिक जरूरतों पर निर्भर होती है—अनुभूति की अद्वितीयता, मार्मिकता, संवेदना की तीव्रता, कलात्मकता और आदमी की गहरी समझ।"—(गिरिजा कुमार माथुर)

बाड़ों में उलझी कविता का स्वर उश्रृंखल ही रहेगा और इनकी अभिव्यक्ति शाश्वत जीवन के पहलुओं को न छू कर मात्र बाहरी कलेवर को लेकर घूमती रहेगी। जब तक जीवन की गहराइयों तक इसकी पहुंच नहीं हो जाती, उसके निहित को यह नहीं पकड़ पाती, तब तक यह निरर्थक ही बनी रहेगी और इसे जनवादी स्वर नहीं मिल सकता—

इस ससुरी कविता को
जंगल से जनता तक
ढोने से क्या होगा

—धूमिल, संसद से सड़क तक

कविता जब तक आदमी के सम्पूर्ण जीवन तक पैठ नहीं पा जाती कविता नहीं होगी—

कविता मांगती है समूचा आदमी अपनी खुराक के लिए

—धूमिल, संसद से सड़क तक

पर वस्तुस्थिति क्या है—

कविता
घेराव में
किसी बौखलाए हुए आदमी का
संक्षिप्त एकालाप है।

—धूमिल, संसद से सड़क तक

इस धुरीहीनता को थामना होगा, बौखलाहट को दूर करना होगा और विद्रोही स्वर को संयम देना होगा तभी काव्य में और काव्य की सहायता से समाज में क्रान्ति सम्भव हो पायेगी।

———

अद्वैत प्रस्थान और योग

—डॉ० उमा पाण्डेय

प्रश्न है कि उस अद्वैतमार्ग में उपनिषदों में वर्णित योग का क्या स्थान है, जहां ज्ञान अथवा श्रवण ही साधक को आत्म-साक्षात्कार कराने का एकमात्र साधन माना गया है तथा जो अद्वैत-प्रस्थान उपनिषदों को प्रमाण रूप में स्वीकार करने के कारण 'अद्वैत वेदान्त' कहलाता है।

वेदान्तसार नामक ग्रन्थ के प्रारम्भ में ग्रन्थकार ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वेदान्त (अद्वैत वेदान्त) दर्शन का प्रमुख आधार उपनिषदें हैं जिन्हें सभी आचार्यों ने 'श्रुति' पद से अभिहित किया है। शारीरिक सूत्र आदि ग्रन्थ तो वेदान्त के उपकारी मात्र हैं। आचार्य शंकर से लेकर परवर्ती सभी भाष्यकारों ने अद्वैत ब्रह्म को 'श्रुत्यैक समधिगम्य' कहा है, अर्थात् अद्वैत तत्त्व एकमात्र श्रुति अर्थात् उपनिषदों से ही प्रमाणित होता है। बादरायण रचित 'ब्रह्मसूत्र' का 'शास्त्रयोनित्वात्'[1] सूत्र भी ब्रह्म के यथावत् स्वरूप के अधिगम का कारण शास्त्र को ही बतला रहा है। एक अन्य स्थल पर आचार्य शंकर ने अनुमान आदि प्रमाणों की साधनता का निषेध करते हुए एकमात्र उपनिषदों को ही ब्रह्मावगति का साधन बतलाया है।[2] अन्य वैष्णव आचार्य भी ब्रह्म को केवल शास्त्र का विषय स्वीकार करने में एक मत हैं।

उपनिषद्, जिनका कि एकमात्र प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है, इस तत्त्व की प्राप्ति के तत्-तत् साधनों का निर्देश करते हुए योग-विधि का विस्तार एवं प्रमुख रूप से विधान करती हैं। कठोपनिषद् के यमनचिकेतोपाख्यान में योगविधि का विस्तृत विवेचन है। कैवल्योपनिषद् स्पष्ट शब्दों में उस परम तत्त्व के साक्षात्कार के लिए श्रद्धा, भक्ति एवं ध्यान के साथ-साथ योग को भी साधन बतला रही है। श्वेताश्वतर उपनिषद् सर्वपाश से मुक्ति पाने के लिए योग का उपदेश दे रही है। योगोपनिषद् में तो विस्तार से सांगोपांग योग का विधान किया गया है। योगी याज्ञवल्क्य 'योगेनात्मदर्शनम्' को ही परमधर्म बतला रहे हैं। श्रुति एवं स्मृति ग्रन्थों में आये उक्तवचन योग के महत्व का प्रतिपादन कर रहे हैं इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

---

१. ब्रह्मसूत्र १-१-३.

२. ब्रह्मसूत्र, शां० भा० १-१-१.

किन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या योग-विधि उपर्युक्त कथनों के आधार पर सम्यग्दर्शन या ब्रह्मसाक्षात्कार का साक्षात् उपाय है? क्योंकि यही श्रुतियां अन्य स्थलों पर आत्मैकत्व विज्ञान को ही निश्श्रेयस का साधन बतलाती हैं और अन्य सभी साधनों का इसकी प्राप्ति में निषेध करती हैं अतः उपनिषदों में योग-विधि के विस्तृत विवेचन का क्या प्रयोजन हो सकता है? क्या आत्म-साक्षात्कार एवं योग-साधनता सम्बन्धी यह विरोध वास्तविक है अथवा प्रतीयमान? विरोध को वास्तविक मानने पर तो श्रुति-प्रामान्य ही समाप्त हो जायेगा। अतः उक्त विरोध को प्रतीयमान ही स्वीकार करना होगा। किन्तु इस प्रतीयमान विरोध का कैसे निवारण हो—यही प्रमुख समस्या है।

शांकर-प्रस्थान में 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'अयं आत्मा ब्रह्म' इत्यादि महावाक्यों द्वारा जन्य ज्ञान ही तत्त्वदर्शन का एकमात्र उपाय माना गया है। इस आत्मैकत्व विज्ञान के लिए द्वैतमूलक योगादि किसी भी साधन को आचार्य शंकर एवं उनके अनुयायी स्वीकार नहीं करते। महावाक्य जन्य ज्ञान ही आत्मैकत्व विज्ञान के लिए पर्याप्त है। किन्तु मण्डन पाद सेवी आचार्य वाचस्पति मिश्र तत्त्वज्ञान के लिए योग की उपादेयता को स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में योगशास्त्र में वर्णित् यम, नियम आदि बाह्य तथा धारणा, ध्यान आदि अन्तरंग साधन हैं। योग के आनुगुण्य को सिद्ध करने के लिए उन्होंने योग की व्याख्या ध्यानपरक की है।[3] आचार्य मण्डन मिश्र ने भी 'विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत' जैसे श्रुति वचनों को प्रसंख्यान (ध्यान) परक माना है। इनकी दृष्टि में उक्त वाक्य से जन्य ज्ञान ध्यान में सहायक होता है। मण्डन मिश्र और वाचस्पति के प्रसंख्यान सिद्धान्त का अनुगमन करते हुए रामानुज आदि वैष्णव आचार्य उपनिषदों में प्रयुक्त 'विदित्वा', 'ज्ञात्वा' आदि पदों का अर्थ उपासना अर्थात् ध्यान ही मानते हैं। वे वाक्य-जन्य ज्ञान को आत्मैकत्व विज्ञान का साक्षात् साधन नहीं मानते। फलत. मण्डन मिश्र, वाचस्पति मिश्र तथा रामानुज आदि वैष्णव आचार्य प्रसंख्यान सिद्धान्त का आत्मैकत्व विज्ञान में साक्षात् साधनत्व स्वीकार करते हुए शंकर-प्रस्थान के विरोध में उठ खड़े हुए हैं। जबकि शंकर तथा उनके मतावलम्बी सभी आचार्य प्रसंख्यान अर्थात् ध्यान या उपासना को आत्मैकत्व विज्ञान का साक्षात् कारण अर्थात् करण स्वीकार नहीं करते। किन्तु चित्त-शुद्धि के लिए प्रसंख्यान तथा योग-विधि की उपयोगिता को स्वीकार करने में इन्हें कोई आपत्ति नहीं। इस प्रकार शांकर मत में उत्तम अधिकारी के लिए गुरु-मुख से वहावाक्यों का केवल श्रवण—श्रोतव्यः—ही आत्मैकत्व विज्ञान के लिए पर्याप्त है। किन्तु वह व्यक्ति जो उत्तम अधिकारी की कोटि में नहीं आता, जो प्रशान्तचित्त, जितेन्द्रिय, प्रहीण-दोष तथा गुणान्वित नहीं है, ऐसे मध्यम अधिकारी को वेदान्त-विद्या का अधिकारी बनने के लिए योग-विधि, ज्ञान-विधि, उपासना-विधि और प्रसंख्यान-विधि की आवश्यकता है। अतः ये साधन आत्म-साक्षात्कार के साक्षात् साधन नहीं कहे जा सकते। इन्हें पारम्पर्या साधन मानने में शंकर एवं उनके मतावलम्बियों को कोई आपत्ति नहीं।

---

३. भामती २-१-३.

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर अज्ञान का विरोधी ज्ञान ही होता है। फलतः आत्मविषयक अज्ञान की निवृत्ति तत्त्वज्ञान से ही संभव है। ध्यान, योग आदि से नहीं। केनोपनिषद् में 'नेदं यदिदमुपासते' कहकर उपासना को आत्मैकत्व ज्ञान में अपर्याप्त बतलाया है।

सूर्य को प्रकाशित करने के लिए व्यक्ति को किसी अन्य प्रकाश की अपेक्षा नहीं होती। ठीक इसी प्रकार ज्ञान रूपी प्रकाश को प्रकाशित करने के लिए किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान तो प्रकाशक है प्रकाश्य नहीं। उपनिषद्-प्रतिपादित आत्म-तत्त्व जो ज्ञानस्वरूप है उसे जानने के लिए भला कैसे योगादि साधनों की अपेक्षा हो सकती है! यह संभव है कि आत्मतत्त्व की यह ज्ञान-रूपता जोकि स्वयं प्रकाशस्वरूप है उसी प्रकार अज्ञान के आवरण से ढक जाये जैसे स्वयं प्रकाश सूर्य मेघ के एक छोटे से खण्ड से ढक जाता है। ऐसी स्थिति में योग आदि आत्मा के इस आवरण को हटाने में सहायक हो सकते हैं। किन्तु आत्म-तत्त्व को प्रकाशित करने के लिए उनकी अपेक्षा नहीं। रागमूलक भक्तिमार्ग के आचार्यों ने ज्ञान के स्वरूप को भलि-भांति हृदयंगम न करने के कारण उपनिषदों में वर्णित उपासना एवं योग-साधना को आत्म-साक्षात्कार का साक्षात् साधन मान लिया है।

स्वयं योगदर्शन चित्तवृत्ति के विरोध को योग मानता है। इस चित्तवृत्ति के निरुद्ध हो जाने पर चिति-शक्ति स्वरूप पुरुष की स्वरूप में अवस्थिति होती है। चिति-शक्ति स्वरूप पुरुष या आत्मतत्त्व के प्रकाशन में आष्टांगिक योग का साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं। यही कारण है कि पंचदशीकार विद्यारण्य स्वामी ने भक्ति को संवादी भ्रम कहा है। समग्रकर्मा-नुष्ठान, जिसमें उपासना, भक्ति आदि भी सम्मिलित हैं, स्वप्रकाश आत्मतत्त्व के ज्ञान का साधन नहीं हो सकता। उपनिषद्-वर्णित श्रवण, मनन आदि अंतरंग साधन ही आत्मैकत्व विज्ञान के उपायभूत हैं।

किन्तु वे लोग जिनका चित्त दोषों से पूर्ण है, जिनमें असंभावन, एवं विपरीत भावना की निवृत्ति नहीं हुई है, उन्हें योगादि साधनों की अपेक्षा है। ये योगादि साधन चित्त को क्षीण दोष बनाते हैं। तत्पश्चात् अविद्या की निवृत्ति तत्वज्ञान के उदय से हो जाती है। अधिकारी-भेद के सर्वमान्य सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर उपनिषद्-प्रतिपादित योगसाधना मध्यम अधिकारी के चित्त-शोधन का साधन बन गतार्थ हो जाती है।

वाक्य-जन्य ज्ञान ही आत्मैकत्व विषयक अज्ञान की निवृत्ति का साक्षात्कारण है इस तथ्य को पुष्ट करने के लिए 'तेजोविन्दूपनिषद्' में योग के अंगों की प्रतीकात्मक ढंग से व्याख्या की गई है। इसमें एक ओर तो योग के अंगों का, आत्मैकत्व विज्ञान में, साक्षात् कारणत्व का निषेध किया गया है, दूसरी ओर नैरुक्तिक अर्थ के द्वारा यह दिखलाया गया है कि ये आत्मसाक्षात्कार के अन्तरंग कारणों में अन्तर्भूत हो सकते हैं। यही इस प्रतीक-प्रक्रिया का प्रयोजन है।

उक्त उपनिषद् में योगदर्शन में कथित आठ अंगों के स्थान पर योग के पन्द्रह अंग बतलाये गए हैं, जो इस प्रकार हैं—यम, नियम, त्याग, मौन, विजनदेश, काल, आसन,

मूलबन्ध, देह साम्य, दृक् स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

इन पन्द्रह योगांगों में से कुछ प्रमुख अंगों का संक्षिप्त प्रकीकात्मक व्याख्यान यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। इन पन्द्रह योगांगों में से प्रथम अंग यम का लक्षण इस प्रकार किया गया है—

यम—सर्वं ब्रह्मेति वै ज्ञानदिन्द्रियग्राम संयमः।
यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ॥ १-१७ ॥

अर्थात् यह सब ब्रह्मरूप ही है। इस दृष्टि से जगत् के अखिल पदार्थों को ब्रह्म रूप ही देखना और इस प्रकार भेद-दृष्टि से सर्वथा मुक्त हो, मन एवं इन्द्रियों का अभिन्न, अखण्डाकार वस्तुब्रह्म में पर्यवसित हो जाना 'यम' कहलाता है। ऐसे यम का ही बारम्बार अभ्यास करना चाहिए। यहां दोगदर्शन में स्वीकृत, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि पांच यमों को सर्वथा परित्याग कर नैरुक्तिक अर्थ की दृष्टि से 'यम' को ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान का साधन बतलाया गया है।

नियम—सजातीय प्रवाहश्च विजातीय तिरस्कृतिः।
नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः ॥ १-१८ ॥

सजातीय प्रत्यय का प्रवाह और विजातीय प्रत्यय का तिरस्कार ही 'नियम' है। यह स्वतः परमानन्द-स्वरूप है। ज्ञानमार्गीय विद्वान् ऐसे नियम का ही नियमपूर्वक अनुष्ठान करते हैं। योगदर्शन में वर्णित शौच, सन्तोष आदि नियमों की उन्हें अपेक्षा नहीं।

त्याग— त्यागः प्रपञ्च रूपस्य सच्चिदात्मावलोकनात्।
त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्ष प्रदायकः ॥ १-१९ ॥

उपनिषद् में त्याग द्वारा अमृतत्व-लाभ की बात कही गई है। यहां पर भी सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा के साक्षात्कार से प्रपञ्चरूप जगत् के परित्याग को 'त्याग' कहा गया है। ऐसा त्याग ही सद्यः मोक्ष प्रदायक है। सांसारिक भोग-विलासों के प्रति राग होने पर भी गृह का परित्याग कर कषाय वस्त्र धारण कर लेना त्याग नहीं है। क्षणिक वैराग्य अथवा जीवन के दुःखों से घबरा कर गृह-त्याग करना भारतीय संस्कृति को कभी भी मान्य नहीं रहा है। यही कारण है कि क्षणिक वैराग्य एवं विषाद्-सम्पन्न अर्जुन को क्षात्र-धर्म से च्युत होते देख श्रीकृष्ण ने उसे स्वधर्म के पालन का उपदेश दिया है। समय-समय पर इस प्रकार के त्याग का विरोध कवियों ने भी किया है।

मौन—यस्माद्वाक्ये निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
यन्मौनं योगभिर्गम्यं तद् भवेत् सर्वदा जडैः ॥
वाचो यस्मिन्निवर्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते।
प्रपञ्चो यदिवक्तव्यः सोऽपि शब्दः विवर्जितः ॥
इति वा तद्भवेत्मौनं सर्वं सहज संज्ञितम्।
गिरामौनं तु बालानामयुक्तं ब्रह्मवादिनाम् ॥ १-२० ॥

आत्मतत्त्व को अवाङ्ग मनसोगोचर समझ कर तत्त्वज्ञानी आत्मतत्त्व के वर्णन से विरत हो जाता है। वाक्-व्यापार से चलने वाले संसार में वाणी का निरोध अर्थात् मौन धारण तो अज्ञानीजन करते हैं।

विजनदेश—आदावन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते ।
येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः ।। १-२३ ।।

निर्जन देश से यहां तात्पर्य ब्रह्मज्ञानी की उस स्थिति से है जो सभी कालों में सर्वत्र ब्रह्म का ही साक्षात्कार करता है। अपनी इस मानसिक स्थिति के कारण ब्रह्मनिष्ठ जनारण्य में रहता हुआ भी निर्जन देश में निवास करता है।

आसन—सुखेनैव भवेत्यस्मिन् अजस्रं ब्रह्मचिन्तनम् ।
आसनं तद्विजानीयादन्यत्सुख विनाशनम् ।। १.२५ ।।

योगदर्शन में आसन का लक्षण 'स्थिर सुखमासनम्' किया गया है। किन्तु पद्मासन, सिद्धासन के अभ्यासी जानते हैं कि किस प्रकार वर्षों तक नाड़ी संस्थान को पीड़ित कर उन्हें आसन-जय करना पड़ता है। इन आसनों का एकमात्र प्रयोजन चित्त की एकाग्रता में सहायता करना है। योगशास्त्र में वर्णित सभी आसनों का अभ्यास अत्यन्त कष्टसाध्य है। अतः ज्ञानमार्ग में वह अवस्था जिसमें अनायास ही निरन्तर ब्रह्म का चिन्तन होता रहे उसे आसन कहा गया है। योग-वर्णित चौरासी आसन तो केवल सुख-विनाशन ही हैं।

दृक्स्थिति— दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत् ।
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी ।। १.२३ ।।

योग में नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि के एकाग्र करने का विधान है ; किन्तु ज्ञानमार्ग में दृष्टि को ज्ञानमयी करके अपने सम्मुख फैले हुए जगत् को ब्रह्ममय देखना ही दृक्स्थिति कही गयी है। अथवा ज्ञान की वह दृष्टि जिसमें द्रष्टा, दृश्य एवं दर्शन की त्रिपुटी समाप्त हो जाती है, उसे दृक्स्थिति कहा गया है।

प्राणायाम—योगदर्शन में प्राणायाम का बड़ा महत्त्व है। श्वास-प्रश्वास के गति-विच्छेद को प्राणायाम कहा गया है। किन्तु ज्ञानी का प्राणायाम योग-वर्णित यान्त्रिक प्रक्रिया से भिन्न है, जिसमें रेचन, पूरण और कुम्भक किया जाता है। इसके विपरीत ज्ञानमार्ग में सर्वब्रह्म भाव से अपनी समस्त वृत्तियों का जो निरोध करता है ज्ञानी का वही प्राणायाम है। प्रपंच का निषेध ही उसका रेचक है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह वृत्ति ही उसका पूरक तथा ब्रह्म में चित्त की वृत्ति का निश्चल हो जाना उसका कुम्भक है।[४]

प्रत्याहार—योगदर्शन में विषयों से चित्त को हटा लेने का नाम ही प्रत्याहार है। किन्तु ज्ञानी की दृष्टि में समस्त विषय आत्मा से पृथक् सत्ता नहीं रखते। अतः विषयों के सामने उपस्थित रहने पर भी उन्हें आत्म-भाव से देखना ज्ञानी का प्रत्याहार है। यही भाव निम्न श्लोक में व्यक्त किया गया है—

---

४. तेजो विन्दु उप. १.३१-३३.

विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चित्तरञ्जनम् ।
प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ।। १.३४ ।।

धारणा—किसी स्थान विशेष यथा भ्रूमध्य, हृदयपुण्डरीक आदि में चित्त को रोक देना योगशास्त्र-वर्णित धारणा है। किन्तु ज्ञाननिष्ठ की धारणा इससे सर्वथा भिन्न है। धारणा से उसका तात्पर्य है—

यत्र-यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् ।
मनसा धारणं चैव धारणा सा परा दर्शनात् ।। १.३५ ।।

अर्थात्—जहां-जहां भी मन जाता हो वहां-वहां ब्रह्म का ही दर्शन करे। ऐसी स्थिति में मन का निरन्तर रहना ही यहां धारणा कहा गया है।

ध्यान—धारणा की परिपक्व अवस्था ही योगशास्त्र में ध्यान कहलाती है। किन्तु ज्ञाननिष्ठ का ध्यान उक्त ध्यान से सर्वथा भिन्न है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार सद्ब्रह्म में रति करके निरालम्ब स्थिति में रहना ही ज्ञानी का ध्यान है। इस प्रकार के ध्यान से ज्ञानी परमानन्द का अनुभव करता है।[५]

समाधि—ध्येयरूप अवलम्बन में विजातीय वृत्ति से रहित सजातीय वृत्ति के निरन्तर प्रवाह को ध्यान कहा गया है। किन्तु जब यही ध्यान अभ्यासवश केवल ध्येयरूप से स्थित हो प्रतिभासित होता है तब यही समाधि की अवस्था है। किन्तु समाधि की वह अवस्था जिसमें निखल चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है उसे असम्प्रज्ञात या निर्विकल्पक समाधि योग कहा गया है। किन्तु ज्ञानमार्ग में ध्येय-वस्तु ब्रह्म के निर्विकार होने के कारण चित्त का ब्रह्माकार वृत्ति से स्थिर होना और पुनः इस वृत्ति का भी विस्मरण कर देना सम्यक्-समाधि कहा गया। अतः ज्ञानमार्ग का साधक भावत्व, शून्यत्व वृत्ति में स्थित न होकर निरन्तर ब्रह्म-वृत्ति के द्वारा अपने पूर्णत्व का अनुभव करता है।[६]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहां योगदर्शन में प्रतिपादित योग के अंगों का प्रमुख ध्येय स्वभावतः बहिर्मुख चित्तवृत्ति को अन्तर्मुख करते हुए उसे चित्त में विलीन या निरुद्ध करना है, वहां अद्वैत प्रस्थान में इन योगांगों की भिन्न प्रकार से व्याख्या करते हुए इनका प्रयोजन चित्तवृत्ति को क्रमशः ब्रह्माकार बनाना है। सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन करने पर ही सांसारिक भोगविलासों के प्रति वैराग्य-भावना जागृत होती है। ऐसा वि क्त साधक जन-संकुल में रहकर भी सदा ब्रह्मभाव से परिवेष्ठित रहता है। उसके लिए भीतर-बाहर सब कुछ ब्रह्ममय हो जाता है। विषय एवं विषयी का भेद ही लुप्त हो जाता है। विषय एवं विषयी एक ही आधार—आत्मा—रूप हो जाते हैं, जैसे घर, शराब आदि अपने औपाधिक रूप का परित्याग करने पर मृत्तिका रूप ही रह जाते हैं। सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन करना अर्थ में ही योग के अंगों की उपयोगिता है। इस तादात्म्य स्थिति को प्राप्त कराने हेतु योगशास्त्र में वर्णित योगांगों का प्रतीकात्मक अर्थ में व्याख्यान किया गया है।

———

५. वही, १.३६.   ६. वही, १.३७.

आकलन

समकालीन हिन्दी कहानी : कामकाजी नारी

—डॉ० कीर्ति केसर

विगत पचास वर्षों में भारत में जो परिवर्तन हुए हैं उनसे यहां का पूरा जनजीवन प्रभावित हुआ है। किन्तु समाज के कुछ वर्गों पर उसका प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है। नगर-समाज में इन परिवर्तनों ने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक प्रभावित किया है। विशेषतः स्वतंत्रता के बाद की बदली हुई सामाजिक, आर्थिक स्थितियों में। महिलाओं की शिक्षा और रोज़गार के अवसरों में काफी वृद्धि हुई है। इन कई परिस्थितियों के फलस्वरूप इनके लिए अपनी समानता की अभिव्यक्ति और रोजगार के नये रास्ते खुल गये हैं। बदली हुई परिस्थितियों में उनकी भावनाओं, विचारों, विवाह, प्रेम, यौन-सम्बन्धों, सामाजिक परम्पराओं, धार्मिक विश्वासों तथा स्त्री-पुरुष चरित्र की नैतिकता के प्रति दृष्टिकोण में बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है। इस दृष्टिकोण ने सदियों से स्थापित "भारतीय नारी" के जीवन-मूल्यों को—जिन्हें तथाकथित शाश्वत मूल्यों के नाम से पुकारते आए हैं—जबरदस्त चुनौती दी है। आज की नारी पति को 'भगवान्' मानने को तैयार नहीं है। इस तरह के परिवर्तन तो स्पष्ट हैं, साफ हैं। किन्तु स्त्रियों की मानसिकता उस स्थिति में अन्तर्विरोधी टकरावों में फंस कर अधिक जटिल हो गई है जहां वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुकी है और आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर हो गई है। उसे दोहरा व्यक्तित्व जीना पड़ता है। घर में उसे दयनीय, सहनशील, त्याग और तपस्या की मूर्ति बनना पड़ता है, घर से बाहर अस्तित्व के लिए जूझना पड़ता है। घर में उसकी स्थिति पति तथा पिता से नीची ही रहती है। यदि ज्यादा महत्व पा भी लेती है तो संक्रान्त मनःस्थितियों के कारण द्वंद्वों, मानसिक तनावों और बाहरी अंतर्विरोधों को झेलना होता है। समकालीन कहानी ने कामकाजी नारी-जीवन की विभिन्न स्थितियों, मनःस्थितियों के द्वंद्वों तथा व्यवहारों को विभिन्न प्रकार से चित्रित किया है।

कामकाजी महिलाएं : पति तथा परिवार

समाजशास्त्री रास का कथन है कि स्त्रियों की सामाजिक शिक्षा-दीक्षा ही इस प्रकार की होती है कि वे पति और बच्चों को ही सबसे अधिक महत्व देती हैं। काम के क्षणों में वे

इस बात को कभी नहीं भुलातीं। डॉ० प्रोमिला कपूर ने कहा है कि "इन औरतों को अपने जीवन में नौकरी से कहीं अधिक संतुष्टि गृहिणी तथा मां के रूप में काम करने से मिलती है। क्योंकि स्त्रियों की नौकरी का उद्देश्य परिवार की आमदनी में योगदान देना मात्र है। इसके द्वारा स्त्रियों का विकास हो तथा उन्हें आत्म-संतुष्टि मिले, यह तो कतई नहीं माना जाता।"[1] समकालीन नारी की यह संक्रांत स्थिति अनेक समकालीन हिन्दी कहानियों में चित्रित हुई है। वह दोहरी ज़िन्दगी से पीड़ित है। उसका शोषण पति तथा उसके परिवार द्वारा दूसरी तरह से होने लगा है। घर की चार दीवारी से उसे स्त्रतंत्रता मिल गयी है किन्तु वह मानसिक रूप से स्त्रतंत्र नहीं हुई। आज भी वह संवेदनशील, भावुक, संकोची तथा पुरुष के 'पति रूप' के प्रति समर्पित अथवा प्रतिबद्ध है। उसे पति, पति-सानिध्य, घर और मातृत्व ही अपनी मौलिक आवश्यकताएं प्रतीत होती हैं। किन्तु पति उसे दूसरे शहर में रह कर अपने बहन-भाइयों के लिए पैसे कमाने के लिए बाध्य करता है। पति के पत्र की प्रतीक्षा वह बड़े चाव तथा उत्साह से करती है किन्तु पत्र पाते ही बुझ जाती है। यह वस्तुस्थिति मोहन राकेश की कहानी 'सुहागिनें'[2] में देखी जा सकती है।

पति के समान उच्चशिक्षा और वेतन प कर भी ये नारियां परिवार में द्वितीय श्रेणी की सदस्य हैं। पहले पत्नी का सहयोग घर की सीमाओं में ही सीमित था किन्तु अब तो वह जीवन के विशाल क्षेत्र में फैल गया है। कहने को नारी स्वतंत्र हुई है किन्तु स्वतंत्रता की उसे कीमत भी चुकानी पड़ी है और उत्तरदायित्व भी निभाना पड़ा है।

मन्नू भंडारी की कहानी 'नई नौकरी' में पुरुष की पारंपरिक श्रेष्ठता (सुपरमेसी) का आधुनिक रूप चित्रित हुआ है। पत्नी सुघड़, सुन्दर, सुशिक्षित तथा कामकाजी होने के साथ व्यवहारकुशल भी है। पति कुंदन को नई नौकरी मिल गई है। अब और तरक्की की संभावनाएं हैं। वह बड़ी सफाई और कुशलता से रमा को अपने हित में प्रयोग करता है। उसके बॉस का सत्कार पत्नी करे, खूबसूरत बंगले को आधुनिक ढंग से सजाए। वह बहुत से रुपए लाकर हाथ पर रख दे तो पत्नी अनुग्रह मानकर घर पर बनी रहे—पति को पत्नी के कैरियर, उसके व्यक्तित्व के विकास, प्रतिभा के सृजनात्मक उपयोग की अपेक्षा अधिक संगत प्रतीत होता है। अतः वह धीरे-धीरे अपने प्रेम, सम्मोहन में लाकर रमा से इस्तीफा दिलवा देता है। वह प्राध्यापिकी ही नहीं छोड़ती, वस्तुतः अपना शोधकार्य भी छोड़ देती है। जल्दी ही वह स्थिति आती है जब उसे लगता है कि "लाल बजरी पर तैरती हुई कुंदन की कार रमा को वहीं छोड़ कर आगे चली गई है।"[3] और रमा अपने अस्तित्व को खोकर पति की पूरक अथवा परिशिष्ट बन कर रह गयी है। पुरुष-प्रकृति के हाथ की सफाई बड़े प्रभावशाली ढंग से

---

१. कामकाजी भारतीय नारी (पृ० ८९, ९०).

२. मेरी प्रिय कहानियां

३. एक प्लेट सैलाब—पृ० २१.

चित्रित हुई है। पत्नी के कर्त्तव्यों के लिए पति के अधिकार ने एक होनहार प्रतिभा को घर की सीमाओं में बंद कर दिया है।

कामकाजी स्त्रियां : विवाह

डॉ० प्रोमिला कपूर का कथन है—"विभिन्न अनुशीलनों से यह ज्ञात होता है कि शिक्षित महिलाओं के दृष्टिकोणों में भारी परिवर्तन आए हैं, विशेष रूप से अपने दर्जे तथा विवाह के प्रति लोगों के दृष्टिकोणों में काफी अंतर आया है।"[४] इन परिवर्तनों की झलक हमें समकालीन हिन्दी कहानी में भी मिलती है। विवाह सम्बन्धी समस्याएं, नारी की बदली हुई स्थिति तथा मानसिकता का संदर्भ पांचवें दशक की कहानियों का मुख्य कथ्य रहा है और साठोत्तरी कहानी ने तो विवाहेत्तर समस्याओं और विशेष रूप से स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को ही अपनी कथावस्तु बनाया। इस परिवर्तित स्थिति के अनेक प्रतिरूप समकालीन कहानी में चित्रित हुए।

अर्थार्जन करने वाली कन्या और परिवार में एक टकराव की स्थिति आ गई है। लड़की विवाह करना चाहती है, किन्तु माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य उसे बराबर टाल रहे हैं। उन्हें उससे होने वाले आर्थिक लाभ को छोड़ना कठिन प्रतीत होता है। अतः वह अपने सुख के लिए कमाऊ कन्या का विवाह नहीं करना चाहते। मेहरूनिस्सा परवेज़ की कहानी 'अकेला गुलमोहर' में सुधा की शादी को बड़े भैया बराबर टाल रहे हैं। सुधा उसे स्नेह समझती है लेकिन छोटे भैया कहते हैं—"याद रखो भैया तुम·· तुम कसाई हो। तुम चाहते हो, हर आदमी कमा कर लाए तो खाए। इसीलिए तुमने सुधा की शादी नहीं की। सुधा दूसरे के घर चली जाएगी तो बंधे हुए दो सौ रुपए लाकर कौन देगा ?"[५] सुधा को विश्वास नहीं हुआ किन्तु एक दिन जब उसने अपने मित्र उमेश के साथ विवाह की अनुमति मांगी तो बड़े भैया ने उसे ठुकरा दिया।

कामकाजी अविवाहित महिला के जीवन का करुण चित्र मन्नू भंडारी की कहानी 'क्षय' में मिलता है। पिता क्षय का रोगी है। उसकी दवाई, घर का खर्च, मकान का किराया, टुन्नी की पढ़ाई और नन्हे-मुन्ने शौक के लिए धन कमाने की चुनौती भरी परेशानियों के बीच नाजुक-जान युवती कुंती नितांत अकेली है। अपनी व्यथा किसी से नहीं कह सकती। उसका नारीत्व इसी तरह मिट रहा है और वह चीख उठी—"हे भगवान् ! अब तू पापा को उठा ले। मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। मैं टूट चुकी हूं।"[६] फिर उसने देखा, पापा वाली खांसी उसे भी उठ रही है और वह क्षयग्रस्त हो गई है।

वस्तुतः घर से बाहर निकलने वाली नारी को दोहरा बोझ उठाना पड़ता है। कुंती जैसी कितनी ही नारियां अपना जीवन पिता की गृहस्थी सम्भालते हुए बिता देती हैं।

---

४. कामकाजी भारतीय नारी—पृ० १६.

५. आदम और हव्वा—पृ० ९.

६. यही सच है—पृ० ९.

मेहरूनिस्सा परवेज़ की कहानी "सिर्फ एक आदमी" में सनकी, लालची पिता पुत्रियों की शादी इस लिए नहीं करता क्योंकि उसे पैसा चाहिए। उसने पुत्रियों को पढ़ाया है, खर्च किया है तो वह वसूल भी करेगा। स्वदेश दीपक की कहानी "पराया चेहरा" में कमाऊ पुत्री का पिता भी नहीं चाहता कि उसका विवाह हो। वह कहता है—"और फिर तुमको क्या दुःख देती है। जानती हो, सारा परिवार उसके सिर पर चल रहा है। खूब लाड-प्यार से रखो। कहीं उसे यह महसूस न हो कि हम उसकी परवाह नहीं करते।"[७] विमला ने सुना और माता-पिता के स्नेह-दुलार का जो आसमान सिर पर था वह भी उड़ गया, एक सम्मोहन टूट गया। वह नितांत अकेली खड़ी रह गयी।

रामकुमार भ्रमर की कहानी 'सच-शूल' में कामकाजी नारी की ग्रंथिबद्ध (अहंवादी) मानसिकता की गम्भीर समस्या का विश्लेषण हुआ है। नायिका अच्छी नौकरी करती है, उसकी आमदनी भी अच्छी है किन्तु बचपन में उसने मां के साथ पिता के दुर्व्यवहार को देखा है। पुरुष का निषेध, पुरुष का विरोध— लेखन में, भाषण में, व्यवहार में उसका लक्ष्य बन गया है। वह पुरुष का साथ पसन्द करती है किन्तु विवाह-बिन्दु तक आते ही दो टूक इंकार कर देती है। वस्तुस्थिति देखिए—"मिस रस्तोगी के मन का पुरुष-विरोध अधिक सघन हो उठा था। विद्रोहिणी हो उठी थी वह। पचासों लेख और पुस्तकें लिख-लिख कर उन्होंने तर्कों से साबित करना शुरू कर दिया था कि पुरुष जाति निम्न है। उन्होंने संस्थाएं बनाई थीं, भाषण दिए थे और सैंकड़ों नई उम्र की लड़कियों में अपने विचित्र तर्क और बागी विचार ला दिए थे। पुरुष-विरोधी एक आंदोलन ही चला दिया था उन्होंने।"[८]

इस प्रकार के कामकाजी नारी पात्र अन्य कहानियों में भी चित्रित हुए हैं—अन्य स्थितियों एवं मनःस्थिति के साथ। एक बिंदु ऐसा भी आता है जब ऐसे नारी पात्र किसी आत्मीय पुरुष का अभाव महसूस करते हैं और एक भावनामयी नारी समर्पण की इच्छा से छटपटाने लगती है। और उसका अहं और तर्क करुणा में बह जाता है। मन्नू भंडारी की कहानी 'जीती बाज़ी की हार'[९] की मुरला अपनी युवावस्था पुरुष जाति के प्रति अपेक्षा में बिता देती है। उसे लगता है कि वह कुछ अनोखा कर रही है, विवाह न करके वह नारी-जाति का गौरव बढ़ा रही है किन्तु अन्ततः उसका नारीत्व मातृत्व से हार जाता है। महीप सिंह की कहानी 'नाला' में विवाहित कामकाजी नारी की दूसरी तस्वीर दिखाई देती है। ३० वर्षीया बहन उच्चशिक्षा प्राप्त है। नौकरी करती है। समय पर विवाह नहीं हो पाता क्योंकि उसकी पति सम्बन्धी परिकल्पना बड़ी काल्पनिक है। मनचाहे पति की तलाश करती रहती है। फिर उम्र का एक मोड़ विवाह में आड़े आता है जहां स्वास्थ्य और सौंदर्य दोनों ही साथ छोड़ चुके होते हैं। अब वह युवा नारी निराशा, घुटन और कुंठाओं भरा रिक्त जीवन जीती है।

---

७. अश्वारोही—पृ० ७०.

८. लौ पर रखी हथेली—पृ० १३.

९. मैं हार गई—पृ० ४३.

भरे-पूरे परिवार में उसकी स्थिति—'मुझे लगता है मैं एक बड़ा सा नाला हूँ और भाई साहब जब भी मेरे पास से गुजरते हैं तो उन्हें मुझे लांघ कर निकलना पड़ता है।'[१०] श्रवण कुमार की कहानी 'गहराई'[११] में एक डॉक्टर अविवाहित युवती का अकेलापन, घुटन और क्षण-क्षण घेरता असुरक्षा का संत्रास अभिव्यक्त हुआ है। महीप सिंह की कहानी 'फोकस'[१२] में अर्थोन्मुख परिवार में कमाऊ कन्या की 'कमाऊ'[१३] स्थिति की उभरती हुई विसंगति देखी जा सकती है। उषा प्रियंवदा की 'पूर्ति'[१४] में कामकाजी अविवाहित महिला के भावनात्मक और शारीरिक अभाव की 'पूर्ति' का दर्दीला साक्षात्कार और यशपाल जैन की कहानी 'लिपस्टिक'[१५] में नवयुवती कामकाजी स्त्री की मजबूरियों में पुरुष के शोषण की करुण स्थिति चित्रित हुई है। कुलदीप बग्गा की कहानी 'उपयोगी'[१६] में इन स्थितियों के आगे का पड़ाव अवलोकनीय है। इसमें कामकाजी स्त्री व्यावहारिक रूप से सहज हो गई है। संक्रांत स्थिति की नारी अब अपनी नौकरी के लिए अपनी महिला बॉस का पक्ष प्राप्त करने के लिए अपने पति का 'उपयोग' करना सीख गयी है। वह अपनी इस स्थिति में पुरुष की तरह व्यावहारिक हो रही है।

इस प्रकार कामकाजी नारी सामाजिक गतिशीलता का महत्वपूर्ण किन्तु अप्रतिरोधी तत्व है। उसकी गतिशीलता में सबसे बड़ा प्रतिरोध समाज की प्राचीन रूढ़ मान्यताएं हैं जो उसके अधिकारों के उपभोग में आड़े आती हैं। सदियों से सामाजिक व्यवस्था पुरुषोन्मुख रही है। बदली हुई स्थिति में संस्कारग्रस्त कामकाजी महिला पुरुष की प्रधानता नकार नहीं पाती। पति बूढ़ा, निकम्मा, निठल्ला, बेकार, रोगी, ऐर्व—जैसा भी हो, समाज उसके बिना स्त्री को मान्यता नहीं देता। मानसिक रूप से भी वह पिता, भाई अथवा पति के समाज में चल नहीं सकती। सामाजिक और पारिवारिक स्तर पर उसका शोषण बढ़ा है। पुरुष समाज का आचरण भी स्त्री के लिए पग-पग पर प्रतिरोध पैदा करने वाला होता है। पिता, भाई और पति के लिए कामकाजी नारी प्रतिष्ठा का प्रश्न है तो प्रतियोगी और सहयोगी पुरुषों के लिए हंसी, ठिठोली, किस्सागोई का विषय है। उसका खुला व्यवहार उसे 'सोसायटी गर्ल' बना देता है तो अन्तःमुखी व्यवहार में उसे सामाजिक और व्यक्तिगत अजनबीपन को झेलना पड़ता है। घर में उसे सेवा, त्याग, करुणा एवं सहनशील पत्नी और माता के प्रतिमान का निर्वाह करना होता है तो कामकाज में प्रतियोगी और सहयोगी पुरुषों की उद्दण्डता, असभ्यता और शारीरिक शोषण के अस्तित्वगत संकट से लड़ना होता है। वेदों, ऋषियों और महात्माओं

१०. कुछ और कितना—पृ० ५२.
११. जहर
१२. कील
१३. संशय का युग
१४. जिन्दगी और गुलाब का फूल
१५. जिन्दगी और गुलाब का फूल
१६. छोटा आदमी बड़ा आदमी

के इस देश में स्त्री के पक्ष में बड़े महान् वक्तव्य और स्थापनाएं दी गयीं किन्तु उसकी दयनीय सामाजिक स्थिति से उसका उद्धार कभी नहीं हुआ। सामन्ती सभ्यता के पुरुषोन्मुख मूल्य न तो महात्मा गांधी के युग में बदले और न ही इन्दिरा गांधी के युग में। सुधार आन्दोलनों, शिक्षा और पश्चिमीकरण के प्रभाव से उसकी स्थिति में जो परिवर्तन हुआ उसमें न मध्यवर्गीय समकालीन नारी की मानसिकता बदली न पुरुष की मानसिकता में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन आया। आधुनिकता को ओढ़ कर जैसे तैसे निबाह की स्थिति चल रही है। इस तरह समकालीन कहानी की मध्यवर्गीय नारी संक्रांत स्थिति के बीच निरंतर संघर्षरत है।

आर्थिक रूप से यद्यपि वह आत्मनिर्भर हुई है तथापि परिवार से वह पूरी तरह बंधी हुई है। कामकाज की शुरुआत वह समय बिताने अथवा शिक्षागत योग्यता के सामाजिक उपयोग के उद्देश्य से करती है किन्तु धीरे-धीरे नौकरी परिवार की आवश्यकता और उसकी महत्वाकांक्षा बन जाती है। इस स्थिति में अविवाहित स्त्रियों को परिवार के बीच मनोवैज्ञानिक स्तर पर निपट अकेलेपन, उद्देश्यहीनता, घुटन और परिवार द्वारा छले जाने की पीड़ा के संत्रास को झेलना पड़ता है। कामकाज में प्रतियोगी, सहयोगी और बॉस जैसे पुरुषों के व्यंग्य, उपहास एवं बदनाम व्यवहार की चुनौतियों का सामना करना होता है। इस प्रकार मध्यवर्गीय कामकाजी अविवाहित नारी का जीवन अंतहीन असुरक्षा से त्रस्त रहता है। समकालीन कहानी इस वस्तुस्थिति से गहरी सम्पृक्त है।

इस जटिल वस्तुस्थिति में आज की कामकाजी नारी को सभी स्तरों पर कठिन संक्रान्त वस्तुस्थिति का सामना करना पड़ता है। परिवेश की सारी चुनौतियों के बीच उसकी स्वचेतना उसका मार्गदर्शन कर रही है। भविष्य के निर्माण के लिए वर्तमान के तमाम प्रतिरोधों के बावजूद वह निरंतर गतिशील है। वह लड़ रही है—समाज से, इतिहास से और पुरुष के एकाधिकार स्वामित्व से। इस लम्बी और कठिन यात्रा की चुनौतियों का एक लम्बा सिलसिला समकालीन कहानी में विविध रूपों में रेखांकित हुआ है—विवेचन, विश्लेषण, रेखांकन एवं बोध के स्तर पर।

————

पर्वतीय लोकगीतों में वर्णित लोक-कथाएं

—डॉ० प्रियतम कृष्ण

पर्वतीय जनों में प्रचलित कथात्मक गीतों में लोक-कथाओं और लोक-गीतों की सभी विशेषताएं उपलब्ध होती हैं। उनके वर्ण्य विषय पर्वतीय लोक-जीवन से सम्बन्धित तो हैं ही, परन्तु भावों और आवेगों के प्रवाह में कहीं-कहीं उनका रूप अतिरंजित भी हो गया है। इन कथात्मक गीतों में पर्वत के सहज और सरल हृदय ने अपनी प्रकृत भावनाओं की अभिव्यक्ति को जिस रूप में प्रस्तुत किया है उससे पर्वतीय लोक-जीवन और वातावरण को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती।

जम्मू के पूर्वोत्तर में स्थित पर्वतीय क्षेत्र में प्रचलित इन लोकगीतों में हमें अनेक छोटे कथांश अथवा बड़े आख्यान वर्णित हुए मिलते हैं। इनमें अधिकांश का सम्बन्ध लोक मानव की अनेक मनोभावनाओं से है। मुख्य रूप से हम इन्हें इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

१. शृंगार अथवा प्रेमसम्बन्धी लोक-कथाएं,

२. करुणाजनक लोक-कथाएं।

शृंगार अथवा प्रेम सम्बन्धी लोक-कथाएं :

पर्वतीय लोकगीतों में वर्णित अधिकांश लोक-कथाओं का सम्बन्ध लोकमानव की सार्वभौम प्रवृत्ति—प्रेम से ही है। इस प्रकार प्रेम सम्बन्धी अधिकतर कथाएं पर्वतीय नृत्यगीतों में वर्णित हुई मिलती हैं। पर्वतीय लोकजीवन में नृत्यगीतों का विशेष महत्त्व है क्योंकि उनके लोक जीवन का कोई भी पक्ष नृत्यगीतों से अछूता नहीं है। विवाहों पर, उत्सवों पर श्रम के उपरान्त थकान मिटाने हेतु अथवा सामूहिक त्योहारों पर नृत्यों और गीतों का आयोजन तो रहता ही है।

गीतों में रस होता है और यह रसानुभूति शृंगारिक लोकप्रेम—आख्यानों का पुट पाकर पर्वतीय नृत्यगीतों में और भी सहज रूप से अभिव्यक्ति हो उठती है। इन प्रेमगीतों में पर्वतीय प्रेमियों का परस्पर वार्तालाप तथा प्रेमी द्वारा प्रेयसी को अनेक उपहार देने का प्रलोभन तो है ही—

(क) क्यों देला अछरिए क्यों देला हो
घघरु सिलाइ मुइए अंवे देला हो।

(ख) तेरे मेरे बोल त त करार भागदेइए तेरे मेरे हो।

साथ ही साथ प्रेम निर्वाह में अनेक संकटों और विपदाओं को सहर्ष झेलना, सुरा व स्त्री का उन्मुक्त भोग तथा किसी अत्यंत रूपसी ग्राम किशोरी की रूपराशि को अनेक रसिक ग्रामजनों द्वारा लूटे जाने का भी स्पष्ट रूप इन गीतों में वर्णन हुआ मिलता है—

(क) पांगी नाले बोतल शराब, पांगी जो चलोरा हो !
पांगी नाले प्यारी पुंगवाली, पाँगी जो चलोरा हो !

(ख) नारादेई हेरणा कमाला कुईश्रा नारा देइश्रा हो !

अब इस प्रकार के नृत्यगीतों में वर्णित दो एक आख्यान प्रस्तुत किए जाते हैं :—

१. पाडर क्षेत्र में नारादेइ नाम की एक अत्यन्त सुन्दर युवती थी। वह हरदयाल से विवाह करना चाहती थी परन्तु अपने मनोरथ में सफल न हो सकी। हरदयाल अमीर था और वह उस से बराबर मिलती रहती है। उस पर आरोप लगता है कि वह बड़ी बदमाश है। उसकी बहन उसे निचले घर (दूसरे स्थान पर स्थित) चले जाने को कहती है। इस पर नारादेइ बुखारी (छत्त की दराज़) से निकल कर भाग जाती है। नीलगुगल नाले में छलांग लगा कर वह आत्महत्या कर लेती है और घरशल नाले में उसकी लाश पड़ी मिलती है।[1]

२. रामदेई को शादीलाल से प्रेम हो गया था, परन्तु रामदेइ की मां उससे रुष्ट हो गई। उसका भाई भरत भी उसे गालियां देने लगा। उसका विवाह किसी अन्य व्यक्ति से निश्चित किया गया, परन्तु वह विवाह के समय हांगोल (पाडर) भाग गई। हयूर ग्राम के पंडित की, जिसने उसे छिपा रखा था खूब पिटाई हुई। खशहाल भोट्ट उसका कोई सगा न था। उसने भी उसे धोखा दिया। पलयाय ग्राम से सम्बन्धित उसकी मां ने उसके सम्मुख हाथ जोड़े, पर उसने उसकी एक भी न मानी। उसके पिता चौकीदार को नीचा देखना पड़ा। उसकी प्रीत दूध और छाछ की प्रीत हीं तो साबित हुई।[2]

करुणाजनक लोक-कथाएं :

करुणाजनक लोक-कथाएं नृत्यगीतों के साथ ही साथ पर्वतीय घुरेईयों और कृषि गीतों में भी वर्णित हुई मिलती हैं। नृत्य गीत स्त्री-पुरुष समाज के वह गीत हैं जिन्हें मनोरंजन हेतु नृत्य करते समय गाया जाता है। ऐसी अवस्था में किसी करुणोत्पादक लोक-कथा का समावेश भले ही कुछ असंगत सा लगता हो, पर उसके कुछ निश्चित कारण हैं। घुरेई पर्वतीय स्त्रीवर्ग के नृत्य गीत हैं। स्त्रियां स्वभाव से ही कोमल होती हैं अतः उनसे सम्बन्धित गीतों में करुणाभाव का समावेश स्वाभाविक ही है। पर्वतीय कथात्मक गीतों के अन्तर्गत आने वाले नृत्यगीतों में इन करुणाजनक कथांशों का समावेश पुरुषवर्ग के नृत्यगीतों पर स्त्रीवर्ग के घुरेई नृत्यगीतों के प्रभाव के कारण ही है। इसके अतिरिक्त किन्हीं कृषि गीतों में भी करुण कथाओं का समावेश हुआ है। ऐसी ही कुछ कथाएं इस प्रकार हैं :—

१, भद्रवाही लोकसाहित्य भाग ३—पृष्ठ ९७.

१. **नृत्यगीतों में वर्णित :**—रुपनू पुहाल (गडरिया) शरद ऋतु में भेड़ों के साथ 'झिके' (मैदानी गर्म प्रदेश) चला जाता है। उसके वियोग में उसकी प्रिया बीमार हो जाती है। वेद (वैद्य) उसकी नाड़ी का निरीक्षण कर, उसके रोग का कारण मानसिक बताता है। प्रिय वियोग में उसे बड़ी यातनाएं झेलनी पड़ती हैं। ज्यूं त्यूं सर्दियां बीत ही जाती हैं और प्रिया अपने प्रिय (रुपनू) की बड़ी बेताबी से प्रतीक्षा करती है। परन्तु बसन्त आने पर उसका हृदय एकबारगी बैठ जाता है जब उसे यह मालूम पड़ता है कि मैदानों से लौटती हुई रुपनू की भेड़ों के साथ केवल मात्र रुपनू की फोटो ही लौट रही है।[3]

२. **घुरेइ गीतों में वर्णित :**—पद्दरी में गलासू नाम की किसी लड़की की सगाई किसी युवक से निश्चित हुई, परन्तु विवाह से पूर्व ही युवक की मृत्यु हो जाती है। गलासू के लिए यह घटना असहनीय है। वह इसी युवक के साथ जल मरने को तत्पर हो जाती है। उसके माता-पिता और भाई उसे बहुत समझाते हैं परन्तु गलासू सभी सम्बन्धियों और ग्रामवासियों की मंगल कामना करती हुई, वाद्ययन्त्रों की ध्वनि के बीच चिता में प्रवेश करते हुए सती हो जाती है।[४]

३. **कृषि गीतों में वर्णित[५] :**—कांदनी क्षेत्र (किश्तवाड़) की सिंचाई हेतु किसी कूल के बनाने का निश्चय हुआ। कूल बनाने हेतु काम पर ६० व्यक्ति गए पर लौट कर आठ ही आ पाए। कूल पर काले दैत्य (करुंड) का वास था जो किसी भले व्यक्ति की बलि मांगता था। रानी इस समाचार से बड़ी परेशान हुई। वह सोचने लगी, यदि भेड़ा ग्राम के बटवाल को भेजती हूं तो उसका काम कौन सम्भालेगा। यदि घघरु बेटे की बलि चढ़ाती हूं तो उसका राज्य कौन सम्भालेगा और यदि घघरु की बेटी की बलि देती हूँ तो खलानी (स्थान विशेष) से सम्बन्ध टूट जाता है। अन्त में वह स्वयं अपनी बलि देने का निश्चय कर लेती है। लोक संगीत वादकों (बजन्त्री) से लम्बी तान छेड़ने का अनुरोध कर वह आत्म बलिदान कर देती है ताकि कूल का निर्माण सम्भव हो सके और इस प्रकार वह स्वर्ग सिधार जाती है।[६]

---

२. वही, गीत संख्या ५४, पृष्ठ ६६

३. भद्रवाही लोकसाहित्य भाग ३, गीत सं० ४२

४. वही, ... गीत सं० ६६

५. वही, ... गीत सं० ३५

६. *Compare : Himachal, Nature's Peaceful Paradise ;*
Dr. S. S. Shashi, Page 83, Also, Page 220
"An interesting and pathetic legend has come down to us in connection with the settlement of new capital (Present Chamba Town). There was no good and convinient water supply and the Raja was anxious to meet this need. He, therefore, had a water course made from the Sarhota Stream round the shoulder of the Shah Madar Hill behind the town. For some reason the water refused to enter the channel prepared

अन्य प्रकार की लोक-कथाएं :

ऐसी कथाओं का सम्बन्ध पर्वतीय लोक-जीवन के किसी भी क्षेत्र से हो सकता है। उदाहरण के लिए ननद और भावज के परम्परागत झगड़े को ही लीजिए। बेटी विवाहोपरान्त भी अपने पैतृक घर से आत्मिक रूप से बंधी ही रहती है। वह पिता के घर में भी अपना कुछ न कुछ अधिकार मानती है पर भावज उसे किसी लेखे में ही नहीं लाना चाहती। इसी संघर्ष का चित्रण एक पर्वतीय लोकगीत में सुन्दर रूप से प्रस्तुत किया गया है। बेटी १२ वर्ष बाद पिता के घर आई है और भावज से कहती है, 'अरि भाभी ! मुझे भूख लगी है ज़रा खाने के लिए दूध-भात दो' पर भावज कहती है कि दूध तो अभी 'दोह्या' नहीं और चावल भी अभी 'रिंधे' नहीं हैं। तब बेटी खाने को छाछ और सत्तू ही मांगती है, पर भाभी कहती है सत्तू तो पिसे नहीं हैं और छाछ भी अभी तैयार नहीं हुई। इस पर बेटी मक्का की रोटी और सरसों का साग ही मांगती है पर इस से भी उसे वंचित रखा जाता है क्योंकि साग खेत से चुना नहीं गया और कम्बख्त रोटी भी अभी पकी नहीं। बेटी हताश हो जाती है, वह कहती है, 'सच ही, माता के न रहने पर मायके में कोई नहीं पूछता, भाई और पिता के न रहने पर संसार में सभी दिशाएं सूनी सी लगती हैं, कोई सहारा नहीं रहता।'

इस प्रकार पर्वतीय लोकगीतों में वर्णित इन उपर्युक्त कथांशों का सम्बन्ध पर्वतीय लोक-जीवन के यथर्थ चित्रों और तीव्र अनुभूतियों की गीतात्मक अभिव्यक्ति से है और उनमें पर्वतीय लोकजीवन और वातावरण की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। यह कथाएं बड़ी मार्मिक भी हैं और हृदयस्पर्शी भी और यही कारण है कि वह इतनी देर से पर्वतीय समाज में निरन्तर बनी हुई हैं।

———

for it and in accordance to the superstition notions of the time this was ascribed to the supernatural causes. The spirit of the stream must be propitiated and the Brahmans on being consulted replied that the victims must be either Rani or her son .. .. She (Rani insisted that if there must be a sacrifice she should be the victim. Her wish prevailed and accompanied by her maiden and bareheaded as for a Sati, she was carried up the Hill to the spot near the village of Balota where the water course leaves the main stream. There a grave was dug and she was burried alive. The legend goes on to say that when the grave was filled in, the water began to flow and has ever since flowed abundantly.

बल्गारियाई कहानी

आशी

—मोर्दान योव्कोफ

जब भी कभी लुत्फी कुएं से पानी खींच रहा होता कुछ बात होती जो उसके मन में घुमड़ रही होती। क्या खूबी है इस अच्छे पानी की, यह खूबसूरत जगह जहां यह है और आखिरी बात यह कि यह कितना खूबसूरत कुंआ है—बस देखने भर की चीज, कि कोई आदमी इसके लिये शेखी बघार सके और घमंड कर सके। गांव के दूसरे कुएं इस जैसे नहीं थे। अपने कुएं की मेड़ से लुत्फी उन कुंओं को देख सकता था, तिड़के हुये, आधे छोड़े हुये, वे गांव के कुएं नहीं दिखायी देते थे बल्कि सुनसान जगह के कुएं लगते थे। उनके गिर्द हरी घास का एक पत्ता भी नहीं था। जमीन धूल भरी थी और पशुओं के खुरों से टूटी ऊबड़-खाबड़ थी जैसे मड़ाई का खलिहान हो। इन सब कुओं का पानी खारा था, सिर्फ जानवरों को वहां पानी पिलाया जाता, आदमी तो शायद ही कभी वहां देखे गये हों, अबाबील, जंगली कबूतर और गाने वाले दूसरे पक्षी वहां दिन भर उड़ते रहते। वे कुएं की जगत के पत्थरों के बीच घोंसला बनाकर रहते। सबसे ऊपर होते अबाबील, बीच में गाने वाले पक्षी और पत्थरों में सबसे नीचे जंगली कबूतर रहते। बत्तखें पानी में तैरती, नहाती रहतीं। कोई प्यासा घोड़ा खुद को मैदान से वहां खींच लाता और वहां खड़ा हो जाता, घण्टों उस खुले कुएं की सरहद पर सोया रहता। लुत्फी के कुएं का पानी मीठा था, रिवाज के मुताबिक वह कुआं उसे उसके पिता से मिला था, पिता को उसके दादा से और पानी जो भी मांगता उसे दिया जाता। यह परिवार का गुण था। और सार्वजनिक हित में यह काम किया जाता था। क्योंकि यह कुआं बड़ी सड़क के किनारे था जो चिफ्तों कौ सौ की ओर से गुजरती क्यूस्तेब्जा की तरफ जाती थी, इसलिये हर राहगीर वहां पानी पीने के लिये ठहर सकता था। और हर गाड़ीवान अपने घोड़ों को पानी पिला सकता था। पानी तीन सौ फीट की गहराई से एक घोड़े के जरिये खींचा जाता था। लेकिन बाहर को एक झरने की तरह से गिरता था। इसलिये आसपास हमेशा हरी घास उगी रहती और पास ही एक झबरीला पेड़ अपनी टहनियां इस तरह फैलाये रहता जैसे किसी सुन्दरी के खुले केश हों।

जब पानी के ढोल को भर कर वह बाहर घोड़ों के पानी की पीने बावड़ियों में पानी भर रहा होता तो यही बात पत्थर की जगत पर खड़ा होकर सोचता रहता। एक घंटे से ऊपर वक्त बीत गया था, लेकिन दोनों बावड़ियां भरने में नहीं आ रही थीं, क्योंकि हमेशा की तरह बीच में कितने ही मटके, बाल्टियां भी तो लोगों के लिये वह भर रहा था। और उधर से इब्रायम चोसूलो भी उसकी घासीली बाड़ लांघ कर उस रास्ते आ रहा था। ऐसी गर्मी में यहां से गुजरे बिना, पानी पिये बिना वह न जायेगा, लुत्फी ने सोचा। दूर से ही इब्रायम ने अपने हाथ उठाने और मूंछें दुरस्त करनी शुरू कीं जबकि लुत्फी पानी के ड्रमों से धीरे-धीरे पानी गिरा रहा था। इब्रायम पानी पीने लगा जैसे वह अपने जिस्म का सारा ताप और सूखा बुझा देना चाहता है, फिर वह गहरे सन्तोष और आनन्द से अपनी गालें थपथपाता खड़ा हो गया। इसका तो कोई कारण नहीं था कि वह कहेगा कि पानी मीठा और शीतल है क्योंकि वह कई बार कहा जा चुका था। इसलिये लुत्फी ने पूछा—

"क्या खबरें हैं इब्रायम ?"

"खबरें ? उन्होंने मुराद को पकड़ लिया। यही खबर है।"

"पकड़ लिया क्या ? कब पकड़ा उन्होंने ? कहां ?"

"वहां हरमनको चोसौ में पकड़ा उन्होंने," इब्रायम ने दक्षिण की तरफ इशारा किया। दो ही सैनिक आये। वे उसे सरहद के पार अफसर के पास ले जा रहे हैं।

लुत्फी काम में लगा था—उसने रस्सी कुएं में छोड़ दी थी इसीलिये इब्रायम की बात का उत्तर नहीं दे सका। फिर जो उसने सुना था, उसने उसे विचारणा में गंभीर बना दिया था। जब वह मुड़ा तो उसने देखा कि इब्रायम जा रहा था। "बेचारा !" लुत्फी ने मुराद के बारे में सोचा। उसके लिये मुश्किल वक्त आ गया। उसने रस्सी गिरारी पर ही छोड़ी और एक बार फिर गंभीर हो गया।

मुराद जालिल का कामगार था। वह जवान छोरा था, बड़े कंधों वाला, खूब मजबूत, अपने मालिक की तरह ही। उन्हें तो कभी इकट्ठे नहीं होना चाहिये था। कहावत है दो तेज पत्थर आटा नहीं पीस सकते। सबसे बुरी बात तो यह थी कि जालिल की एक लड़की भी थी। यह सच था कि कुंवारे मखोल में कहते थे कि वह सुन्दर है—जरूरत से ज्यादा सुन्दर, लेकिन आशी सचमुच प्यारी थी। जहां तक कुंवारों की बात थी, उस तक उनकी पहुँच नहीं थी। यह बात नहीं कि उसका बाप अमीर था बल्कि यह कि वह उनमें से किसी से भी प्रभावित नहीं थी। मुराद लम्बा, पतला मर्दनुमा था और गम्भीर भी, वही उसके दिलपसन्द का था। कानून की पाबन्दी के होते हुये भी वह मुराद के सामने ही बेपर्दा हुई थी। जालिल भांप गया कि क्या मामला है। इसीलिये वह बेवजह मुराद को डांटता और उस पर झल्लाता, फिर उसने आंगन में उसके आने पर पाबन्दी लगायी। उसे अस्तबल के ऊपर के कमरे में बैठना पड़ता। एक दिन उसने मुराद और आशी को अचानक ही दीवाल के करीब बातें करते हुये पकड़ लिया था। गुस्से में पागल जालिल ने मुराद पर छड़ी का प्रहार, उसके

दीवाल फांदते-फांदते, कर ही डाला था। ऐसे अपमान को भूल जाना मुराद जैसे आदमी के लिये आसान नहीं था। सारा दिन वह खेतों की तरफ भटकता रहा। लेकिन उस शाम जैसे ही अंधेरा बढ़ने लगा। जालिल के मकान की सड़क की ओर वाली खिड़की के ऊपर आग बढ़ती दिखायी दी। अगर लोगों ने उसे देख न लिया होता और वक्त पर बुझा न दिया होता तो उसका सारा घर जल कर खाक हो गया होता। उस अंधेरे में मुराद को सीधे मैदान की ओर तेजी से जाते देखा गया था।

किसी को विश्वास नहीं हुआ कि मुराद खुद को इतनी जल्दी पकड़ा जाने देगा। वह कहीं डेलिओमीन की तरफ विलुप्त हो सकता था। और अपनी पहचान हमेशा के लिये छिपा सकता था। पर आखिर में मुराद पकड़ ही लिया गया। वह वहां से एक घंटे दूर की जगह तक ही जा सकता था। वह दूर क्यों नहीं भाग गया? क्यों खुद को छिपाया नहीं उसने? कौन बता सका है? लुत्फी ने अपने मन में सोचा। शायद ऐसी स्थिति में दूर जाना इतना आसान नहीं था जब आदमी आशी की नीली आंखों के जादू में बंधा हुआ हो। अब वे उसे सरहद की ओर ले जायेंगे और कप्तान कितना सख्त है—खुद से यह कहते हुये लुत्फी ने गहरी सांस ली।

"बेचारा! उसे बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ेगा।" लुत्फी ने ड्रम खाली किया और फिर रस्सी छोड़ दी। तब उसने दूसरे कुओं की तरफ देखा और वह उनसे अपने कुएं की तुलना करने से अपने को नहीं रोक सका। उसमें दर्प का भाव आया और एकदम ही वह वह सब कुछ भूल गया जो मुराद के बारे में सोच रहा था।

दुपहर होने वाली थी। लुत्फी अपना काम खत्म कर रहा था। दोनों बावड़ियां किनारों तक साफ-स्वच्छ पानी से छलरने की हद तक भर गई थीं। बस अब पशुओं का आना ही बाकी रह गया था। जैसे ही वह मुड़ा अचानक ही उसने शराबघर से निकलते दो फौजियों को देखा, उन्होंने सफेद कमीजें और टखनों में सफेद पट्टियां सी पहनी हुई थीं। बन्दूकों से नोकदार चाकू लगे हुये थे। उनके बीच में मुराद था। उसने गौर किया कि मुराद और सैनिक कुएं की तरफ आ रहे थे। मैं किस तरह उसकी मदद कर सकता हूं? लुत्फी सोचने लगा 'चलो कम से कम थोड़ा पानी ही पी ले।' उसने ड्रम का पानी नहीं गिराया और इन्तजार करने लगा।

मुराद—कितना पहलवान था वह। वह थके और भारी कदमों से उधर आ रहा था। वह न तो निराश था और न डरा हुआ—उसका चेहरा भी पहले जैसा था, सांवला, तांबई और काली सुन्दर मूंछों से भरा। सिर्फ उसकी आंखें बदल गयी थीं—वे जैसे जल रही थीं और लगता था जैसे आस-पास की किसी चीज को न देख रही हों। बल्कि किसी और ही चीज को देख रही थीं। इस भयानक गर्मी में उसने अपनी मोटी ऊनी टोपी कंधों पर क्यों डाली हुई थी? लुत्फी ने उसकी तरफ देखा लेकिन उससे कुछ कहने का साहस नहीं जुटा सका बस सिर्फ उसे देखकर अपना सिर ही हिला सका।

पहले सैनिकों ने पानी पिया, फिर मुराद ने। लुत्फी ने देखा था कि वह जगत के पी ही रह गया था, लगा जैसे वह वहां बैठना चाहता हो या उस पर खड़ा होना चाहता हो वह ज्यादा उस ओर नहीं देख सका। क्योंकि उसे रस्सी ड्रम के साथ नीचे फेंकनी थी सहसा दोनों सैनिक चिल्लाये, लुत्फी ने चारों ओर देखा, मुराद वहां नहीं था। वे दोन सैनिक, दोनों जवान लड़के से थे, वहां हतप्रभ और हैरान से खड़े थे। उनमें से एक अपनी बन्दूक नीचे फेंक दी और जगत पर झुक गया, अपनी टोपी एक हाथ से थामे वह कु में झांक रहा था। दूसरा दौड़ कर इधर-उधर गया और फिर लौट कर चिल्लाया।

"वह कूद गया था। उसने खुद को कुएं में डाल दिया था।"

लुत्फी कांपने लगा। तो मुराद ने यही किया होगा। क्या हुआ होगा? क्या वह गि पड़ा या उसने छलांग लगा दी? न केवल लुत्फी ने बल्कि सैनिकों ने भी ठीक-ठीक कुछ नहीं देखा, एक चीज साफ थी कि मुराद कुएं में था।

एक सैनिक सरहद पर कप्तान को खबर करने भाग ही रहा था कि तत्क्षण, तत्का ही वह खबर कैसे उड़ी बस केवल खुदा ही जानता है। चारों तरफ से लोग भागते हुये आये आदमी, औरतें, बच्चे, बलगारी, तुर्क, तातारी— गांव की सारी जनता जैसे चली आयी हो। मौसम साफ और खुशनुमा था। और लुत्फी को लगा कि जैसे मकान और छतें नीची हो गयी हों। जैसे कोई तूफान ऊपर उठ आया हो, आसमान ऐसे लगा मानो असंख्य गहरे रंग के पंखों में उड़ने लगे—कहीं-कहीं एक दो सफेद कबूतर भी दिखायी पड़ जाते थे।

कुएं के चारों ओर एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो रही थी। लोग पूछ रहे थे, बातें क रहे थे और चीख रहे थे। उनके चेहरों पर भय और पीलापन था। कुएं की जगत अब दिखायी नहीं पड़ रही थी। सिर्फ पेड़ों के सिरे और उनकी लटकती हुई शाखें आदमियों के सिर के ऊपर दिखायी दे रही थीं। पहले से भी ज्यादा चिन्तित लुत्फी को पहले एक आदमी, फिर दूसरे आदमी की बातों का उत्तर देना पड़ा।

जमा लोगों में कुछ तो खासतौर पर कुएं के तल में झांक रहे थे। लेकिन वहां क्या देख सकते थे? कुछ भी नहीं। पहले तो कुएं की पथरीली दीवाल दिखायी देती, फिर नीचे गहरे पानी का एक घेरा, सिक्के के बराबर चमकता दिखाई देता। बस यही दिखायी दे सकता था। मुराद का वहां कोई निशान नहीं था।

कुछ देर तक तो लोग जोर से बतियाते रहे, आपस में तर्क-वितर्क करते रहे, बाद में चुप हो गये और फिर शान्त हो गये। इसके अलावा वे कर भी क्या सकते थे? सबसे पहले तो कप्तान को आना था। उसके बाद कारा हसन को, जो इन गहरे कुओं की सफाई करता था और नीचे तक जाने का साहस रखता था, जरूर आना था।

थका और निराश सा लुत्फी एक तरफ बैठ गया। अब क्या होगा? वह सोचने लगा। अगर मुराद डूब गया तो लोग इस कुएं का पानी नहीं पियेंगे। क्या वह डूब गया होगा? क्या ऐसा मुमकिन है कि वह डूबा ही न हो?

तभी दो आदमी पास ही बात करने लगे, उसने अपने कान उनकी तरफ लगा दिये।

—मैं तुम्हें कहता हूँ कि वह जिन्दा है'', बासिल ने कहा। वही बासिल जो नक्षत्रों की तरफ देखता रहता था।

''बताओ बताओ बासिल,'' बूढ़े विचो ने उसकी बात सुनकर कहा, ''यह कैसे मुमकिन है ?''

''मैं जो कहता हूं कि वह जिन्दा है।'' नक्षत्रों की ओर देखने वाले ने फिर दोहराया।

वह छोटा गोल-मटोल आदमी था जिसके सफेद बाल और लाल चेहरा था। उसकी एक आंख में सफेद मोतिया था और वह उससे देख नहीं सकता था। जब किसी तरफ देखने को होता तो अपनी एक आंख से देखने की कोशिश में वह आदतन सिर एक तरफ कर लेता, जैसे पक्षी करते हैं। वह भी आसमान की तरफ ताकता था। इसीलिये उसका नाम नक्षत्रों की ओर देखने वाला ताराताक पड़ गया था।

''सुनो दादा विचो,'' उसने कहना शुरू किया, ''तुम्हें याद नहीं ? जब कासफ ओस्मान का बेटा कुएं में गिरा था तो क्या हुआ था ? क्या वह डूब गया था ? कुछ भी नहीं हुआ उसे ? जैसे ही उसे बाहर निकाला वह अपने बाप की मार के डर से तेजी से भाग खड़ा हुआ उसी वक्त…।

''बताओ बासिल जल्दी बताओ…यह कैसे संभव है ? आदमी तो पत्थर की तरह है—वैसे ही गिरता है। वह कैसे बच सकता है ? वह गिरा और तभी अन्त आया।''

''क्या हुआ अगर वह गिरा ? वह तो अभी भी जीवित है।''

''बताओ न……ऐसे-कैसे मुमकिन है ?''

''बिल्कुल मुमकिन है। कुएं की हवा भारी है और वह आपको ऊपर उठाये रखती है जब कासफ ओस्मान का लड़का गिरा था तो उसने घर में कती ऊन की पूरी पतलून पहनी हुयी थी। हवा की वजह से पतलून हवा से भर गयी और वह धीरे-धीरे गिरा। जैसे उसे कोई हाथ नीचे ले जा रहे हों। यह मुराद भी तो ऐसे ही गिरा। मुझे किसी ने बताया कि वह ऊनी टोटी कंधे पर रखे गिरा था। यह टोटी सदरी के साथ ही सिली रहती है और वैसे ही हाथ की बनी हुयी ऊन की है। मैंने तो एकदम कहा था कि वह अभी जीवित है।''

उम्मीद करी कि वह जीवित ही हो, लुत्फी ने सोचा। फिर उसने गहरी सांस भरी और खारे पानी के कुओं की ओर देखा। कबूतर कभी उड़ रहे थे तो कभी वहां बैठ रहे थे।

''करालीमें'', ताराताक ने अपनी गाथा फिर जारी की, ''वहां एक आदमी है पेपो पागल सा आदमी। जब उसे झक चढ़ती तो वह कुएं में छलांग मारता, वहां कोई डिब्बा पा लेता और उससे पानी मापना शुरू कर देता। वह डिब्बा भरता और उसे खाली करता, भरता और खाली करता और गिनता रहता जैसे गेहूं तोल रहा हो।''

उसके आस-पास खड़े लोग दुबारा हंस पड़े।

''बताओ बासिल बताओ…फिर हां क्या हुआ फिर ?'' बूढ़े विचो ने अभी भी यकीन न करते हुये कहा और तब किसी और ने भी पूछा।

"ओर तब, उन्होंने उसे बाहर निकाल डाला, बस उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा।"

उम्मीद करो कि वह जीवित हो, लुत्फी ने फिर सोचा और खड़ा हो गया। कप्तान आ रहा था। दूसरे लोग भी खड़े हो गये। जैसे ही कप्तान पहुंचा गांव की तरफ से आती हुयी एक बूढ़ी स्त्री दिखायी दी। वह रो रही थी और दो औरतें उसे ला रही थीं। वह मुराद की मां थी। भीड़ में चुप्पी छा गयी।

"मुराद, ओ मेरे बेटे मुराद! मुराद"—वह औरतों के हाथ से छूटती सी जोरों से चीखी। "मुराद···मुराद···छोड़ो-छोड़ो। मुझे जाने दो।"

दो-तीन बार उसने कुएं की ओर लपकने की कोशिश की, जैसे कि वह खुद भी कुएं में डूब मरना चाहती हो। उसे जबरदस्ती परे किया गया। सूखी आंखों में वह अब धीरे-धीरे विलाप कर रही थी—लम्बे आलाप में जैसे वह रो नहीं रही हो बल्कि गा रही हो।

काराहसन पहुंच गया था और तैयार हो रहा था। रस्सी उसकी कमर से होकर उसकी टांगों तक में बांध ली गयी थी। उसकी पतलून की निचली मोहरी पलट दी गयी थी और वह कमर तक नंगा था। जैसे ही हाकिम आया, वह आदेश सुनने में लग गया।

कप्तान हाकिम ने उसे कुएं में उतरने का हुक्म दिया। दस आदमियों ने कुएं की जगत की रस्सी थाम ली और उसे धीरे-धीरे छोड़ने लगे। आखिर में रस्सी जहां तक जा सकती थी पहुँचकर खत्म हो गई। काराहसन पानी तक पहुँच गया था। भीड़ चुप थी इन्तजार में थी। सन्नाटे में कुछ वक्त बीता। लगा जैसे असाधारण रूप से ज्यादा वक्त लग रहा हो। सहसा पतली रस्सी जो मोटी रस्सी के समानान्तर लटक रही थी, इशारे के निमित्त हिलने लगी। वह संकेत के लिये ही लटकाई गई थी। वह रस्सी को इस लिये हिला रहा था कि वह चाहता था कि उसे ऊपर खींचा जाये। लोग चक्के पर रस्सी खींचने लगे, घोड़ा वहां से पहले ही हटा दिया गया था। जल्दी ही काराहसन ऊपर दिखाई दिया। लेकिन मामला क्या था? कि काराहसन का जिस्म हरा पड़ गया था। उसका चेहरा खरोंचा हुआ था और खून से भरा था।

"कहां है वह? तुम उसे क्यों नहीं लाये?" हाकिम ने पूछा।

"मुझे तो बाहर निकालो" काराहसन मुश्किल से बोला।

उन्होंने उसे निकाला और एक तरफ लिटा दिया। वह गहरी सांसें ले रहा था उसकी आंखें भयानक रूप से खुली हुई थीं।

"बताओ·· बोलो। तुमने उसे क्यों नहीं निकाला?" हाकिम ने फिर पूछा।

"क्योंकि मालिक वह आना ही नहीं चाहता। मैं उसे ऊपर लाना चाहता था पर उसने मुझे दबोच लिया और मुझे डुबोने लगा। मैं अब नीचे नहीं जाऊंगा। भई मुझे क्या लेना-देना। कोई नीचे जाना चाहता है तो उसे जाने दो। मैं तो नहीं जाता।"

कुएं के चारों तरफ की भीड़ में खलबली मच गई। न सिर्फ मुराद जीवित है बल्कि वह बाहर आने से भी इन्कार कर रहा है। क्या मर्द है?

लोगों ने हर तरह की विधियां आजमाईं। जिनकी बुलन्द आवाजें थीं वे कुएं की ओर झुके और जोरदार आवाज में बोले, कि वह खुद को ऊपर ले आये और स्वयं को पुलिस के

सुपुर्द कर दे। कुछ ने सुझाया कि काराहसन को फिर नीचे भेजना चाहिये। लेकिन अब उसे एक छड़ी दी जानी चाहिये। अगर मुराद आने से इन्कार करे तो उसे छड़ी से पीटा जाये और बांध कर ऊपर खींच लिया जाये। पर इससे कोई फायदा नहीं था क्योंकि काराहसन ने किसी भी कीमत पर दुबारा कुएं में जाने से इन्कार कर दिया। हाकिम के हुक्म से शराबघर से एक बड़ा दर्पण लाया गया। दर्पण पर सूरज की रोशनी टिका हाकिम ने कुएं पर रोशनी डाली और मुराद को एक क्षण देखना चाहा। रोशनी कुछ ही गहराई तक जा सकी थी—नीचे तो कुएं में अंधेरा था। फिर न जानते हुये कि कौन सी कोशिश की, कप्तान हाकिम ने आदेश दिया कि मुराद की मां वहां लाई जाये। बूढ़ी औरत जो समझ पाई या नहीं, कुएं तक आई और आंसू बहाते हुये पुकारने लगी—"मुराद, मुराद", फिर उसने कुएं में छलांग मारने की कोशिश की। औरतों ने उसे एक ओर हटाया।

तभी एक जवान सी औरत गांव से आती दिखाई दी। उसके कद और उसकी चाल से ही लोगों ने अन्दाज़ा लगाया कि वह जवान है वर्ना उसका चेहरा बुर्के से ढंका था। भीड़ में फिर हलचल हुई।

"आशी, आशी !" कई फुसफुसाये।

आशी ऊपर आई और एक तरफ ठहर गई।

"वह क्या चाहती है ?" कप्तान ने पूछा।

"वह मुराद को पुकारना चाहती है," तारातक बासिल कुएं की जगत तक आकर कप्तान के कानों में कुछ फुसफुसा कर बोला।

लड़की ने किसी की ओर नहीं देखा। वह कुएं की मेड़ तक गई, एक हाथ से पानी खींचने की जगह पर जमी कड़ी को पकड़ कर उसने नीचे देखा। उसने खुद को छिपाने की फिर ज़रूरत नहीं समझी और अपना बुर्का उठा दिया। जिन्होंने उसे कभी नहीं देखा था उन्हें यकीन हो आया कि वह खूबसूरत थी लेकिन उसके संवारे बाल तांबई रंग के लाल से थे, उसका चेहरा संगमरमरी सफेद था और आंखें नीली थी। वह झुकी और पूरी ताकत से बोली, "मुराद बाहर आओ, मैं आशी बुला रही हूं—मुराद, मैं आशी हूँ, आशी।"

उसकी आवाज़ कुएं में प्रतिध्वनि में गूंजी। वह फिर कुएं से एक तरफ आई और रस्सियों की तरफ मुड़ी। एक-दो पल तो कुछ नहीं हुआ। अचानक सकेत वाली रस्सी हिलने लगी। शोर करते हुये लोग चक्के से जुड़ी रस्सी की ओर लपके। आशी घर की ओर बढ़ी। वह कुछ दूर तक गई, जैसे वह जानती थी कितनी दूर जाना है—फिर मुड़ी। मुराद कुएं के सिरे पर दिखाई दे रहा था। मज़बूत आदमियों के हाथ उसे एक तरफ निकालने के लिये बढ़ रहे थे। मां अब भी सुबुक कर रो रही थी। आशी कुछ देर ठिठकी रही, उसने मुराद को देखा, फिर मुड़ी और अपने घर के अन्दर दाखिल हो गई।

———

अनुवादक : **गंगा प्रसाद विमल**

कहानी

उपहार

—अवतार कृष्ण राज़दा

यदि किसी को दस महीनों में ही दस वर्ष बीतते देखने हों, हट्टे-कट्टे और मांसल बद को अस्थिपंजर में बदलते देखना हो तथा अपने मन की खुशी की रंगारंग फूलों से भ फुलवारी वीरान-उजाड़ होती हुई देखनी हो तो वह गुलाम अहमद को याद कर सकता है अफसोस यह नहीं कि तपती धूप के कारण उसका मन-भावन फूल सूख गया, उसकी पत्ति झड़ गयीं। किन्तु दुःख तो इस बात का था कि बिना काले-घने बादल ये ज़ोरदार बूंदें क बरस गयीं और इतना बरस गयीं कि यह ज़मीन पर आ गिरा, खाक हो गया और अब इस फिर से खिलने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। यही हसरत उसके दिल-दिमाग में जल र थी, सांप की तरह विष घोल रही थी और एक इन्सान में जो स्फूर्ति और ताज़गी की ग आती है, वह उसमें नहीं रह गयी थी।

बस, यह जो दस महीने उसके यहां काम करते बीत गये, वह ही जानता था। इ कालावधि में उसका दिल कितनी बार रह-रहकर डूबा उतराया, वह काया ही जानती थी काम करते समय किसी की तस्वीर बार-बार आंखों के सामने आकर परेशान-सी करती। छः फुट कद ! गौरा-चिट्टा रंग ! लम्बी नाक ! घुंघराले बाल ! देखने में पहलवान जैसा ! लेकिन···लेकिन···यह क्या ? वह अपने-आपसे प्रश्न करता, किन्तु उसका यह प्रश्न हर बार मानो गले में अटक कर अपने-आप निरुत्तर होकर रह जाता। वह अपने को कोसता। दांतों से अपनी जीभ काटता और उसके बाद वह अपनी असहायता पर इस तरह अपनी आंखों से आंसुओं की झड़ी लगा देता कि कोई देख न ले, सुन न पाये। किन्तु जब बट् साहब उसके पास आता और उसके बनाये माल को देखकर उसे कहता कि यदि इसी लगन और ईमानदारी से काम करोगे तो दोनों की किस्मत बदल जाएगी तो न जाने क्यों और कैसे एक सहमभरा उत्साह उसके मन में पैदा हो जाता और उसके बाद कुछ क्षण के लिए सोच के बयाबान में खो जाता।

बट् साहब नवयुवक था। पिछले कई वर्षों से अपना एक कारखाना चला रहा था—क्रिकेट बल्ला बनाने का। कारीगरों से काम कस कर कैसे लिया जाता है, यह वह जानता नहीं था। यदि इस कारखाने का पुराना मालिक होता तो दूसरी भाषा में बातें करता। उसका तरीका कुछ ऐसा था जिसे सुनकर कोई शक कर सकता था कि वह इस कारखाने का मालिक है या मज़दूर। पर वह बुरा न था। इसीलिए तो उसने अपने विश्वस्त एवं सफल कारीगर को इस काम पर लगाया था—पिछले दस महीने से।

गुलाम अहमद क्रिकेट-बल्ला तो ज़रूर बनाता था किन्तु उसका मन यह काम करने को नहीं करता। जब कभी उसके कुशल-शिल्पी हाथों से कोई अच्छा सा बल्ला तैयार होकर निकल जाता, तो उसको देखकर उसका दिल डूब सा जाता। इस बैट से न जाने कौन सा नौजवान खेलेगा—वह कुछ क्षण के लिए मन ही मन सोचता, किन्तु फिर अपने काम में तल्लीन हो जाता।

इन्हीं दस महीनों में एक दिन ! हां, यह वही दिन था जब सुबह-सवेरे उसने कारखाने में प्रवेश किया और अपने बनाये माल को अच्छी तरह देख लिया। वहां हज़ारों की संख्या में बल्ले थे। बल्ले...बल्ले हज़ारों बल्ले...वह मन ही मन बुदबुदाया। पर उसके लिए इनमें से क्या कोई एक भी है ? शायद कोई नहीं, कोई नहीं। किन्तु क्या पड़ी है मुझे यह काम करने की, जिससे मेरे मन की शान्ति का चमकता सूर्य रह-रह कर अस्त हो जाता है और मैं आहत होकर रह जाता हूं। इस प्रकार उसने अपने आपसे कई प्रश्न किये, किन्तु इनमें से वह किसी एक का भी सही-सही उत्तर न दे पाया। उसने एक दीर्घ निःश्वास लिया। फिर हाथ में बसूला लेकर अलगा बल्ला गढ़ने की सोची। सोची क्या, उसकी सारी सोच इस समय मानो एक ही बिन्दु पर ठहर कर रुक गयी और वह बिन्दु उसके मन-मस्तिष्क में अपनी असहायता और पेट के रूप में आकर केन्द्रित हो गयी। हां, इसी ने उसको यह काम करने के लिए मजबूर किया और बट् साहब के इस आश्वासन पर कि यदि कारखाने से ज्यादा से ज्यादा माल तैयार होकर निकलेगा तो दोनों की किस्मत बदल जाएगी, ने उसको यह काम लगन से करने को प्रेरित किया था। सच तो यही था कि उसको यह काम करने में तनिक भी दिलचस्पी न थी। किन्तु उसका एक अरमान तो ज़रूर था जो एक तीर बनकर हर पल उसके दिल में टीस पैदा करता और मन-मस्तिष्क को विक्षिप्त ख्यालों की रस्सियों से जकड़ लेता। काश ! मेरा यह अरमान भी पूरा हो जाए ! वह अपने आपसे कहता, फिर शून्य की ओर देखकर न जाने क्या-क्या तलाशने की कोशिश करता, किन्तु वहां उसको धुंध के सिवाय कुछ नहीं दीखता। कुछ नहीं ! और जब वह अपने काम में तल्लीन होता तो उसको अपना वह अरमान पूरा होने की एक आशा रह जाती और वह है बट् साहब का दिया हुआ आश्वासन जिसको वह मन में बार-बार दोहरा कर सोचता कि क्या पता उसको एक नया जीवन-दान देने में यही एकमात्र कारण बने। इसी आशा के साथ उस दिन उसने कारखाने में दुगने उत्साह से काम किया और ब्रुश में से थोड़ी सी पालिश लगाकर बल्लों पर चलाना शुरू कर

दिया। पहले तो ये बल्ले भद्दे लग रहे थे। फिर थोड़ी सी चमक आयी··· कुछ और चमक··· और ये शीशे की तरह चमकने लगे।

'आई, कितने शानदार हैं ये बल्ले ! शायद कोई भी पच्चास से कम का नहीं होगा!'

'हां, उससे कम क्या होगा ? लकड़ी तो बहुत महंगी हो गयी है।'

पच्चास रुपये ! दो दिन की मज़दूरी।

जैसे ही ये बल्ले पालिश चलाने के बाद आईने की तरह चमकने लगे, तो उसका दिल एक बार फिर डूब सा गया। उसने अपने होंठ काट लिए !

बट् साहब उसके पास आया और कारखाने में बने इस सारे माल को तैयार देखकर बहुत खुश हो गया और गुलाम अहमद से पूछा—'तुम्हारे कोई बच्चा है ?'

'हां जनाब, एक लड़का है।'

'क्या उम्र है ?'

'बस, अब इसी वर्ष सोलह पार करेगा।'

'हुँ ! तो ठीक है। तुमने अब तक क्यों नहीं कहा। खैर कर लो काम। हां, इसी प्रकार, दिलचस्पी से। इसमें मेरा भी लाभ होगा और तुम्हारा भी'—बात को काट कर बट् साहब वहां से चल दिया, किन्तु इस एक वाक्य को सुनकर गुलाम अहमद एक बार फिर सोच के बयाबान में खो गया। उसकी आंखों के सामने कई तस्वीरें आने लगीं—एक बहुत बड़ा स्टेडियम ! तमाशाइयों से खचाखच भरा हुआ ! कोलाहल ! खिलाड़ियों में से उसका इकलौता बेटा पूरी सावधानी से बल्ला घुमाते हुए अपनी टीम को पराजय से बचने के लिए डट कर मुकाबला करते हुए ! उसकी हर हिट कभी चौका होता है, कभी छक्का, जिसको देखकर दर्शक तालिया बजाते हैं और इन तालियों की गूंज उसका उत्साह बढ़ाती है। उसके शतक बनने में अब केवल दो रन शेष ! बल्ले और गेंद के बीच संघर्ष ! तमाशायी उसके शतक बनाने की प्रतीक्षा में। कइयों के हाथों में फूलमालाएं हैं और कई उसको गले लगाने के लिए खेल के मैदान में छलांग लगाने के लिए तैयार। सबों में एक कौतुक भरा उत्साह। और ज्यों ही वह अगला रन बनाने के लिए बल्ला उठाता है तो एल. बी. डब्ल्यू···

'गुलाम अहमद ! गुलाम अहमद !'— जोर से बट् साहब उसको बुलाते हैं और वह एकदम चौंक कर उठता है, उसके पास जाता है—जनाब !

'तुम्हारा बनाया माल बहुत बढ़िया है। क्या कहने ! अब इसको अलग-अलग डिब्बों में बन्द कर दो'—बट् साहब ने खुशी से मचल कर कहा।

गुलाम अहमद भी यही चाहता था कि ये सभी बल्ले यहां से भेज दिए जाएं। ये सब उसको काटने को आ रहे थे। न जाने क्यों इनको देख उसका दिल रह-रह कर डूब जाता। ये बल्ले भी क्या चीज हैं ? भाग्यचक्र ! जब इनसे जम कर खेलो तो आसमान की ऊंचाइयों तक उड़ा देंगे और जब किसी प्रकार की सुस्ती आ गयी तो देखते ही देखते जमीन पर पटक

देंगे—उसने अपने आपसे कहा। और झट अन्य मज़दूरों की सहायता से सारे माल को डिब्बों में बन्द कर बट् साहब के सामने रख दिया।

'यह लो'—बट् साहब ने उसकी ओर कागज़ का पुर्जा थमाते हुए कहा।

'जनाब, यह क्या ?'—गुलाम अहमद ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

'गेट पास।'

'जनाब, यह किस लिए ?'

'तुम यहां से एक कीमती गेंद और बल्ला ले जा सको—इसलिए !'

यह सुनकर गुलाम अहमद अवाक् रह गया। उसको लगा कि आकाश पर काले-घने बादल छा गये हैं और इन्होंने ज़ोरदार गर्जन के साथ बरसना शुरू कर दिया है। उसकी अांखों में आंसू उमड़ आये और इससे पहले कि वह फूट पड़ता बट् साहब ने पूछा—'क्यों क्या बात है ? बोलते क्यों नहीं ? तुम्हारी यह चुप्पी ही मुझे हमेशा सालती है।'

'जनाब'—गुलाम अहमद आगे कुछ न बोल पाया। उसकी तो मानो सांस कहीं बीच में ही रुक गयी थी।

'अरे भाई इसमें झिझकने की तो कोई बात नहीं। यह मेरी ओर से बेटे के लिए उपहार समझो। कोई अपने कुशल-शिल्पी हाथों से सुन्दर बल्ला बनाये किन्तु अपने बेटे के खेलने के लिए इसको खरीद न सके, यह हम लोगों के लिए कितनी शर्म की बात है। रख लो इसे '

'ऐसी बात नहीं है जनाब ! उसके लिए मुझे बल्ला नहीं, बैसाखियां दीजिए'—गुलाम अहमद ने उमड़ते हुए आंसू पोंछकर कहा। उसकी आवाज़ भर्रा गयी। दिल भारी हो गया। फिर कांपते हुए होठों से कहा—'जनाब···जनाब··· मेरे बेटे की टांगें टांगें···'

'ओह ! ऐसी बात है ? बट् साहब ने उसकी ओर देखकर कहा और चुप हो गया।

———

तुम्हारे नाम कविता की एक शाम

—दुर्गा प्रसाद दत्त

बहुत पास आकर भी मैंने तुम्हें महसूसा है
चाहा अंक भर, मुझे प्यार दो।
कांपते अधरों का मधुर-स्पर्श
पिरामिडों में सो गई चिर प्रतीक्षित मुसकान
अपने गुदगुदे हाथों से तुम लौटाओगी।
सुरमई उषा सी सपनिल
अपनी पलकों के साये तले तुम मुझे ही सुलाओगी।
प्राची के गालों की सुर्खी सा धूप का चम्पई चुम्बन—
—मुझे ही मिलेगा—
बहते हिम सोतों की लय पर ; मलहार गाते
गिलहरियो की कुलांचों सा
लुक-छिप खेलते अंगुलियों के पपोटों का आन्दोलित स्पर्श।
प्रश्नांकित वाणी से
पीले कपोलों
तीखी भौंहों से
आलिंगित— तुम, मुझे पूछोगी।
अनमने भाव से, कुछ भी
जो भर देगा भावित नयनों में सपनों का ससार
फिर 'हम-तुम'
हमतुम खो जाएंगे
सावनी घटाओं के आर-पार

———

रौंदे हुए गुलाब

—जितेन्द्र उधमपुरी

जर्जर, खण्डित जीवन की
इधर–उधर बिखरी
कतरनों को जोड़–जोड़
जी लेना चाहता हूं,
आस–पास फैला
यह समय का कसैला समुद्र
पी लेना चाहता हूं।

उगाना चाहता हूं
तपते मरुस्थल में
सपनों के सूर्यमुखी, अमलतास
करता रहता हूं नित्य
जीवित रहने के
कई ऐसे
विफल प्रयास।

कोई
खरीदा, स्वीकारा नहीं करता
इन
सूखे, जले, झुलसे
फूलों को
सिंगारा, संवारा नहीं करता
कोई इन से
देव प्रतिमाओं को

गूंथा नहीं करता
कोई इन्हें गजरों में
टांगा नहीं करता
कोई जूड़ों में।

पर
मैं फिर भी
संभाले हूं
अब तक
तुम्हारी स्मृतियों के
मुरझाए गुलाब
अपने अंतस् पर
अंकित कई दाग़।

कश्मीर के संस्कृत कवियों का प्रकृति वर्णन

—प्रो० परमानन्द शास्त्री

प्रकृति शब्द से अभिप्राय है—उत्तम रचना। 'प्र' प्रकृष्टता का द्योतक है और 'कृतिः' सृष्टिवाचक शब्द है।[1] इस दृष्टि से प्रकृति शब्द अपने व्यापक अर्थ में समूची संसृति को समेटे हुए है। चर, अचर, चेतन, अचेतन, पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाशादि सभी पदार्थ इसकी परिधि में समा जाते हैं। समस्त विश्व में प्रकृति से भिन्न यदि किसी सत्ता को स्वीकारा गया है तो वह केवल मात्र ब्रह्म ही है, अन्य कुछ नहीं। यहां तक ब्रह्म के अस्तित्व का प्रश्न है, दार्शनिकों से लेकर जन-साधारण तक यह एक विवादास्पद विषय बना हुआ है। अस्तु इस ऊहापोह (तर्क-वितर्क) में प्रकृति ही एकमात्र शक्ति बन जाती है। अचला, अजरा, अमरा, सर्वव्यापनी, शक्तिमती और विनाशविहीना ये सब प्रकृति के ही नाम हैं।[2]

अपने सीमित अर्थ में यह प्रकृति सुन्दरता, उत्कृष्टता एवं आकर्षण का प्रतीक बन जाती है।[3] कश्मीर के संस्कृत कवियों को यही अभीष्ट (प्रिय) था। अतएव उन्होंने सुन्दरता की देवी मान प्रकृति की आराधना की। अपने काव्यरूपी उपवन को इन्हीं सौंदर्यपरक भावों तथा अनुभूतियों से पुष्पित एवं सुगन्धित किया।

महाकवि मेण्ठ, रत्नाकर, मंख, आनन्दवर्धन, शिव स्वामी, जगद्धर भट्ट, क्षेमेन्द्र, शम्भु, कल्हण, बिल्हण, जल्हण और अभिनन्द आदि ऐसे दिग्गज कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में प्रकृति को अत्यन्त अनूठे ढंग से चित्रित किया है।

उनका प्रकृति वर्णन 'जड़ पदार्थ' वर्णन नहीं। अन्यथा यह "अन्धे का हाथी बन जाता, जिस में 'आंशिक ज्ञान' से ही समूचे ज्ञान का भास रहता है। वस्तुतः उनका प्रकृति वर्णन ज्ञानाग्नि—विशुद्ध हृदय की ही आत्म दीप्ति है, जो स्वयं ही उपमेय है और उपमान भी।

१. प्रकृष्ट वाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टि वाचकः।

२. त्रिगुणात्म स्वरूपा या सर्वशक्ति समन्विता।
प्रधाना सृष्टि करणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते॥

३. सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृति सा प्रकीर्त्तिता॥

उनकी इस अवस्था की तुलना उस स्थिति से की जा सकती है जब निर्मल-स्वच्छ स्फटिक मणि सदृश अन्तष्करण में प्रकृति स्वतः ही प्रतिबिम्बित हो जाती है और फिर यह जड़, निश्चल प्रकृति थर्मामीटर (*Thermometer*) के पारे की भान्ति संवेदनशील (*Senstive*) प्रतीत होती है। कवि का यह व्यष्टिगत चिन्तन भी तब पढ़ने समझने का वास्तव में यही समुपयुक्त अवसर होता है। कवि-हृदय का यह अध्ययन, सहृदय पाठक के अनेकानेक विवादास्पद प्रश्नों का समाधान ढूंढ निकालता है।

प्रस्तुत संदर्भ में केवल कविवर मंख के "श्रीकण्ठ चरित" और बिल्हण के "विक्रमाङ्क देव चरित" का संक्षिप्त उल्लेख करने जा रहा हूँ, जिन्होंने अपनी कृतियों में प्रकृति वर्णन के माध्यम से संस्कृत साहित्य का उत्कर्ष बढ़ाने में सर्वाधिक कार्य किया है।

प्रकृति का मानवीकरण करने और उसे मानवीय अनुभूतियों के वसन पहनाने मे मंख सर्वथा सिद्धहस्त कवि हैं। उसने अपने काव्य में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, जैन, चार्वाक आदि दार्शनिक विचारों के साथ-साथ पौराणिक आख्यान तथा वेद वेदाङ्गों का उल्लेख भी किया है। इसके अतिरिक्त धर्म, अर्थ, काम, संगीत, नाट्य, गणित, अश्व, कोष और अलंकार आदि शास्त्रों का संकेत भी किया है। इतना ही नहीं वरन वनस्पति विद्या (*Botany*) प्राणी विद्या (*Zoology*), नौ विद्या (*Nevigation*) आदि विषयों को भी अछूता नहीं छोड़ा है। परन्तु ये सब रहते हुए भी श्रीकण्ठ चरित के बाह्य एवंआभ्यन्तर स्वरूप को प्रौढ़तम तथा मधुरतम बनाने का सबसे अधिक श्रेय कवि के प्रकृति-चित्रण को ही जाता है। इस दृष्टि से 'कैलाश-वर्णन', 'प्रात वर्णन' और 'चन्द्रमण्डल वर्णन' की विधा अपनी भव्य छटा से सदैव मन को हर लेती है।

"श्रीकण्ठ चरित" के ग्यारहवें सर्ग में मंख ने चन्द्रमण्डल का आख्यान उद्दीपन रूप में किया है—'चन्द्रमण्डल' अपने विभिन्न रूपों से वियोगिनियों को संतप्त करता है। मानवती रमणियों के मान को चकनाचूर कर देता है।[४] इसी लिये चन्द्रमा के काले-काले मध्यवर्ती चिह्न (*The spot on the moon*) को राह चलती बधुओं ने नरक का खुला द्वार समझा। क्योंकि शीतल चन्द्रमा वियोगिनी बधुओं के लिये इतनी जलन पैदा कर रहा है कि वे बेचारी मरने को तैयार हो गईं।

चांद का सहारा लेकर कामदेव ने मानवती स्त्रियों के प्रति संहार मुद्रा धारण कर ली।[५] मानिनियों की आंखों में चांद ने गर्म जल की वृद्धि की। इस प्रकार चन्द्रमा वियोगिनियों को रुलाये जा रहा है। इतना ही नहीं वरन इसकी किरणें राही युवकों की आंखों में आंसू बढ़ाने में भी प्रसिद्ध हैं।[६]

---

४. मण्डलेन शशिनो विनिविश्य व्योम्नि दीर्घकरदण्ड सखेन।
मारबज्र गुलक प्रतिभेनद्रागभज्यत बधूजन मानः॥

५. श्रीकण्ठ च० ११ सर्ग, ३ श्लोक

६. श्रीकण्ठ च० ११.

जले हुए वियोगी हृदय की राख ही सफेद कमल-पराग के रूप में वायु उड़ाये जा रही है, परन्तु मानवतियों के प्रति वह भी कठोर हो गई है। अर्थात् शीतल मन्द सुगन्ध पवन भी विरहणियों के संताप को बढ़ाने वाली बन गई है।

आगे चलकर कवि चन्द्रबिम्ब को रात (निशारूपी स्त्री) का स्तन कहता है और इस के काले धब्बे की तुलना चूचुक से करता है। परन्तु चन्द्ररूपी स्तन की विशेषता यह है कि इसे कामी जन मसल नहीं पाते बल्कि इसके विपरीत अपनी किरणों से यह स्वयं कामी जनों को मसला करता है।

परन्तु बिल्हण को जब कल्याण नगर का वर्णन अभीष्ट है तो उनके विक्रमांक देव चरित में यही चन्द्र सर्वथा असहाय एवं निर्बल बना दिया गया है। विरही आंखों में आंसू भरने या उनका दिल दुखाने की बात नहीं क्योंकि यह बेचारा स्वयं अनन्य शरण सा बना राहु से भयभीत कल्याण नगर की सुन्दरियों के मुखरूपी हजारों चन्द्रमाओं में जा बैठता है कि कहीं राहु उसे ग्रस न ले।

अपनी चांदनी से यह अन्य नगरों की शोभा बढ़ाता है और इस प्रकार उन पर उपकार करता है। परन्तु जहां बिल्हण का चांद कल्याण नगर का ऋणी है। क्योंकि अपनी चन्द्रमुखी सुन्दरियों के बीच छुपाकर और उसकी राहु से रक्षा कर कल्याण नगर ही चन्द्रमा पर उपकार करता है।[७]

इस प्रकार जहां प्रकृति वर्णन या वस्तु वर्णन कवि के निजी भावों का अनुवर्ती बन जाता है। इस दृष्टि से इन कवियों के लिये प्रकृति प्रेरक भी है और प्रेरय्य भी। अन्यथा यही चन्द्रमा उनकी एक अन्य (मुक्तक) कविता में कुण्डली बनाये हुए शेषनाग बन जाता है और इसका कलंक, कलंक नहीं वरन सोये हुए भगवान् विष्णु का रूप बन जाता है।[८]

इसी तरह उनके एक और (स्वतन्त्र) श्लोक में यही चांद नाल विहीन ताड़ का पंखा बन जाता है। ऐसा पंखा जो सूर्य की प्रखर-प्रचण्ड किरणों मे संतप्त संसार को शीतल करने के लिये रात ने अपने हाथों में पकड़ रखा है।[९]

बिल्हण के ये वे ही श्लोक थे जिन्हें सुनकर राजा मदनाभिराम की पुत्री यामिनी पूर्ण लतिका उनके प्रणय बन्धन में बन्ध गई। अन्यथा इससे पूर्व वह उसे अन्धा समझती थी और कवि उसे कुष्ठ रोगिणी समझता था। क्योंकि दोनों युवा हृदयों के मध्य पर्दा डाल कर

---

७. प्रविश्य यद् वेश्मसु रोणिपतिर्गुण महान्तं लभते न संशयः।
यदेष राहो रूप यात्य लक्ष्यतां पुरन्ध्रि वक्त्रेन्दु सहस्रमध्यगः॥

८. नेदं नभो मण्डलमिन्दुराशिर्नेताश्च तारा नवफेन भंगाः।
नायं शशीकुण्डलितः फणीन्द्रो नायं कलंकः शयितोमुरारि॥

९. इन्दुमिन्दु मुखि ! लोकयलोकं, भानुभामुभिरमुं परितप्तम्।
बीजितुं रजनिहस्त गृहीतं, तालवृन्तमिवनाल विहीनम्॥

अध्ययनाध्यापन चलता आ रहा था। दोनों के गन्धर्व विवाह का रहस्य खुलने पर कवि को प्राण-दण्ड मिला। वध-स्थल पर ले जाते समय कवि ने इसी प्रेयसी की स्मृति में पञ्चाशिका की रचना कर डाली।

अस्तु बिल्हण ने विक्रमांक देव चरित में अति सहज, स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक शैली में 'चन्द्रोदय' वर्णन किया है। चन्द्रमा का क्रमिक विकास ठीक इसी प्रकार है जैसे प्राणी जगत में मानव का है। चन्द्रोदय से पूर्व प्राची दिशा का वर्णन करते हुए कवि लिखता है— "इन्दु के संयोग से अपने भीतर चन्द्ररूपी शिशु को धारण किये पूर्व दिशा का मुख गर्भवती की भान्ति सफेद हो गया। चांद निकल आने पर केवड़े (केतकी) की धूली जैसी चांदनी उदयाचल के जंगल में फैल गई। अब पूर्व दिशा का मुख सफेद चन्दन से पुता हुआ सा लगने लगा। फिर मिट्टी में खेलते शिशु की भान्ति बाल-चन्द्र अपनी लाल रंग की किरणों से मटमैले शरीर वाला हो गया जैसे वह पूर्वीय पर्वत की गैरिक धूलि में खेल रहा हो।

अस्तोन्मुखी सूर्य लाल हो गया था। कदाचित् कमलिनियों को ठगने के लिये ही चन्द्रमा ने भी वैसा ही रूप बना लिया, परन्तु फिर भी वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी (शत्रु) अन्धकार को दुर्गम पर्वत कुञ्जों में खदेड़ दिया या आत्म रक्षा हेतु किलों और कन्दराओं में घुस गया। उसका यह स्वरूप देख मानवतियों के मान घुल गये और उनके आंसुओं से ही धुल कर जैसे चांद की लाली भी समाप्त हो गई। तब युवा चांद ने अपनी चांदनी पर अभिमानी बनकर, किरणों को फैला कर, प्रणयपूर्वक सहलाते हुए कुमुदिनी को खिला दिया। यौवन और विलासपूर्ण जीवन के कारण मानो चान्द की रूपराशि और भी निखर उठी, उसके दोष भी छुपने लगे। इस सम्बन्ध में बिल्हण की उद्‌भावना अत्यन्त मौलिक एवं अद्वितीय है—"पूर्वीय पर्व पर विद्यमान, चांदी में मढ़े दर्पण की तरह चांद का कलंक आकाश की नीलिमा की परछाईं जैसा सुशोभित होने लगा।"[१०]

पिघली हुई स्फटिक मणि के असंख्य झरनों के समूह जैसी चांदनी के छा जाने से संसार में बड़ी ही सुखद शोभा बढ़ गई जिसे देखते ही बनता है। इस अनुपम शोभा ने मानवती नायिकाओं के मानरूपी कीचड़ को धो डाला।

समुद्र मन्थन के समय जैसे क्षीर सागर का दूध पतला होकर चारों ओर फैल गया था ठीक वैसे ही यह दूधिया चांदनी सभी ओर फैल गई है।

प्रभात वर्णन करते हुए इसी चांद को बिल्हण राजहंस और हाथी दान्त की गोल डिबिया जैसा बना देता है और चान्दनी इसकी गोद में छिप कर इसे निस्तेज बना देती है। अर्थात् प्रात होते ही इसकी समस्त रूप-सम्पदा फीकी पड़ जाती है। यही हाल रात भर जलने वाले दीपकों का है, वे अब धूल से लिपटी मुर्गी के सिर की भान्ति सफेद दीखने लगे हैं।

---

१०. रूप्यदर्पण तल प्रतिमल्ले लाञ्छनं तु हि न दीधिति बिम्बे।
शोभते स्म गगन प्रतिबिम्बच्छायमद्रिशिखरस्थिति भाजि॥

लगता है दीपक अपनी चमक वियोगिनियों के गालों पर छोड़ कर फीके पड़ गये। चन्द्रहास मणियों ने अपना गीलापन वियोगिनियों की आंखों (आंसू रूप) में छोड़ा और स्वयं सूख गईं।

उदीयमान सूर्य की किरणें ज्यों ही पर्वत शिखरों पर टिकने लगीं तो अपनी कल्पना को और भी तर्कसंगत बनाते हुए विल्हण लिखते हैं—जिन पर्वतों ने अपनी गुफाओं में अन्धेरे को छिपाने का अपराध किया था वे ही सूर्य किरणों को अपने मस्तक पर धारण कर नमस्कार कर रहे हैं और सूर्य अपने वरद हाथों से उन्हें क्षमा प्रदान कर रहा है। महाकवि बिल्हण बहुत ही अच्छे शृंगारिक कवि भी थे। वे अपने प्रभात वर्णन में भी रसिकों को शृंगार रस पिलाने की व्यवस्था कर देते हैं। उनका यह प्रयास सर्वथा सफल एवं स्तुत्य है। वे लिखते हैं—"जिन मानवतियों ने कामदेव के सभी शस्त्र कुण्ठित कर दिये और अपने प्रेमियों के पास नहीं पहुँच सकीं; परन्तु ज्यों ही मुर्ग की बांग ने उन्हें प्रभात की सूचना दी तो उनके मान की गांठें टूट गईं।"

इसके अतिरिक्त प्रभात का उल्लेख कवि ने ब्रह्म-वेला के रूप में भी किया है। यह समय शारदा के आराधन (अध्ययन) के लिये सर्वथा समुचित है।

प्रभात वर्णन के सम्बन्ध में अब तनिक मंख की शैली भी देखिये—प्रभात में सूर्योदय से पूर्व ही तारे छिप जाते हैं, इस साधारण सी बात को कवि ने क्या ही अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है :—

"स्वर्ग की अप्सराओं ने आकाश के फर्श पर तारे नहीं अपितु फूल बिछा रखे थे ज्यों ही रथ पर सवार हो सूर्य भगवान् आये तो उनके मद-मस्त घोड़ों की सांसों से वे (फूल रूपी तारे) उड़ गये।"[११]

सन्ध्या वर्णन—सन्ध्या वर्णन करते हुए भी बिल्हण ने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। कमलों के मित्र सूर्य के पांव में कमलिनियों के कांटे चुभ गये अतः वह पश्चिमी समुद्र तट पर जाने में असमर्थ स्थानीय पर्वत की चोटी पर चढ़ गया। जैसे लंगड़ा व्यक्ति किसी के कन्धे पर बैठ जाये। तब उसका रंग मसूर की दाल जैसा लाल हो गया। इस प्रकार अपने सफेद तेज को खोकर निस्तेज सूर्य सम्भवतः रत्नों से कान्ति पाने के लिये समुद्र में घुस गया। या शायद समुद्र-मन्थन के समय प्राप्त उच्चैःश्रवा जैसे घोड़े प्राप्त करने की लालसा से ही वह (सूर्य) समुद्र में घुसा ताकि अपने पुराने घोड़े बदल सके या दिन भर चलने से थके घोड़ों को शराब पिला सके। ज्यों ही वह रथ सहित समुद्र में घुसा, उसके घोड़ों के खुरों से समुद्री सीप टूट गये और उनसे निकले मोती आकाश में तारों के रूप में चमकने लगे।

सन्ध्या का फीका अन्धकार धीरे-धीरे घना हो चला जैसे कोई सुन्दरी बिखरे बालों पर कंघी करके जूड़ा बना ले।

यत्र-तत्र टिमटिमाते दीपकों ने अन्धकार की निर्बाध गति को यूं रोका जैसे अंकुश हाथी को रोक लेता है।

---

११. श्रीकण्ठ च० १६/१०.

यह एक स्वत:सिद्ध प्रमाण है कि प्रकाश (तेज) के अभाव का ही दूसरा नाम अन्धकार है। सूर्य के छिपने से ही रात होती है। इस अति साधारण बात को भी बिल्हण कितने चमत्कारपूर्ण ढंग से कहते हैं— 'सूर्य तीनों लोकों का दीपक है, विधाता ने (प्राकृत नियम) द्वारा इसे बुझा दिया। इस बुझते हुए दीपक से जो धुआं निकला वही अन्धकार के रूप में छा गया और रात हो गई। इस अन्धकार में भी संसार की शोभा अद्वितीय है। लगता है जैसे समस्त संसार नील मणियों से जड़ दिया गया हो या काजल के समूह से ढक दिया गया हो, अथवा सागर में उठने वाली नीली-नीली लहरें सर्वत्र फैल गई हों। सम्पूर्ण वस्तुओं को छुपाने के लिये कटिबद्ध हो अन्धकार ने आंखों से (दृष्टि) शक्ति छीन ली, परन्तु वह त्वचा (चमड़ी) की स्पर्श शक्ति पर काबू नहीं पा सका।

इधर तनिक निरन्तर परिवर्तनशील प्राकृतिक दृश्यों से हट कर कैलाश की ओर दृष्टि-पात करें जो अपने भीतर समस्त सौंदर्य सम्पदा को समेटे हुए है। कविवर मंख ने अपने श्रीकण्ठ चरित के चतुर्थ सर्ग में इसका विशद वर्णन किया है। उन्होंने कैलाश पर्वत की सतत व्यापन शील विभा का चित्रण अनेकानेक परिवेशों एवं स्वरूपों में किया है। यह चन्द्रमा की भान्ति छवि बिखेरने वाला एवं उत्तर दिशा का हास है। स्फटिक मणियों की चोटियों में प्रतिबिम्बित और सुन्दर मृगों से युक्त कैलाश को ब्रह्मा ने सम्भवत: चन्द्रकिरणों से बनाया है। ये मन-हर शीतल किरणें जिन्हें मंख की कोमल कान्त कल्पना ब्रह्मा के कमल नाल का परिधान पहना देती है। कैलाश के शिखरों से परिसरण शील किरणें दिशाओं में सब ओर फैल जाती हैं। तब ऐसा लगता है कि शिव मुकुट में निवास करता हुआ चन्द्रमा समुद्र निवास का आनन्द भी लूट रहा है। इतना ही नहीं वरन कैलाश अपनी इन्हीं रश्मियों से दिशाओं के मुख पर तिलक लगाता हुआ सा लगता है। उधर इन्हीं किरणों ने वर्षाकालीन श्याम वर्ण बादल की कालिख को पी लिया और सफेद दीख रहे हैं। इन्हीं किरणों की दीप्ति (चमक) से चमकते हुए सफेद बादल और कुहरे के टुकड़े (खण्ड) इन्द्र के हजारों नेत्रों की भ्रान्ति उत्पन्न कर रहे हैं।

अलका पुरी इसे टकटकी बान्धे देखती है। अपनी असीम प्रभा (चमक) रूपी पंख फैलाये मानसरोवर स्थित हंस जैसा कैलाश ज्यों ही पानी में झलकता है तो भूलोक दर्शन लालसा से आये शेषनाग की भ्रान्ति होती है।

जहां किन्नरियों (स्त्रियों) के रूप-लावण्य को देख लगता है काम-दहन से पूर्व छुपा कर रखी गई कामदेव की सर्वोत्तम सम्पत्ति ये ही हैं। जहां की स्फटिक मणियों के कारण रात्रि स्वयं को दिन समझती है और शंकर के नीले कण्ठ के कारण दिन स्वयं को रात मानता है। गंगा इसकी परिक्रमा करती है। जहां तारकासुर का वध करने वाले कुमार कात्तिकेय की जननी तथा शिव-प्रिया पार्वती सानन्द वास करती है, ऐसा अनुपम यह कैलाश पर्वत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कश्मीर के संस्कृत कवियों का प्रकृति-वर्णन साहित्य-श्रीवृद्धि या शब्दों का ताना-बाना मात्र नहीं वरन यह दार्शनिक एवं पौराणिक मान्यताओं एवं रूढ़ियों का भी पर्याप्त परिचय देता है।

नदी

—महाराज कृष्ण संतोषी

कहीं कोई ठहराव आ गया है
अभी तक मेरे निकट से
गुजरी नहीं
स्वच्छ जीवन जलधार !

सोचता हूँ—
क्या यह सम्भव है
कि कोई रोक ले
प्रवाह जल का ?
सोचता हूँ—
क्या है यह सम्भव
किसी के होंठों पर
कभी भी हरा नहीं होगा
प्यास का मरुस्थल ?

इस संसार नदी के तट पर
प्रतीक्षा में कितने लोग
मर चुके हैं
कितने हो रहे हैं बूढ़े
किन्तु नदी का जल
चीखता हुआ
बहे जा रहा है अविराम !

उदास साहिलों पर
तपती हुई रेत के ढेर बन गये हैं

तलवों की तो बात क्या
पदचिन्ह भी जलने लगे हैं।
सुना था—
इस नदी का जल
पत्थरों से भी टकरा कर
संगीत उत्पन्न करता था
आज यह नदी फिर चीखती क्यों है ?
आज यह नदी फिर सिसकती क्यों है ?

जब भी मैं
इस नदी के जल को
छूता हूँ
मुझे जले हुए मांस की बू आती है !
पल भर ठहर जाती है नदी
और जल की आंखों में
उदास और आहिस्ता
गुज़र जाते हैं
बरसों पुराने दृश्य —

मैं देखता हूँ—
अधूरे बेहोश नग्मे
बुद्धिमान खोपड़ियाँ
ईमानदार मृत चेहरे
तथा लज्जाता हूँ
जब अतीत के गाल पर
अन्याय के विषैले दांत
गढ़े हुए देखता हूँ।

कुछ देर नदी रोती है
फिर टकरा कर
मांसखोर पत्थरों से
किनारों को तोड़ती है
उसी समय कोई हिस्सा
मेरी देह से अलग होकर,

चिल्लाता है—
"मैं जानता हूँ
नदी रोती क्यों है ?
जल सड़ा क्यों है ?"

ऊपर बूढ़ा सूरज
मेरे इस बेबस चिंतन पर
मुस्काता है
किन्तु वह मुस्करायें—
मैं जानता हूँ
सिंह और सिंहासन की भूख में
कोई अन्तर नहीं होता।

कहानी

आधुनिक - अत्याधुनिक

—प्रोम गोस्वामी

दस्तक देने से पहले उन्होंने धोती की गांठ कसी और लड़ टेंट में खोंस लिया। तब नई कोठी के नये-नकोर फाटक को देखा, जिसके फौलादी किवाड़ों पर रोगन पुता था। कनिष्ठा उंगली का पिरामिड-सा बनाकर लोहे की चद्दर को ठनकाया। खोटी अठन्नी के बजने जैसी मद्धिम आवाज़ हुयी जो मुश्किल से गज-भर दूर खड़े व्यक्ति को सुनाई दे। उंगली के कोने पर लाखा रंग लग गया था और वह जगह दर्द करने लगी थी—यह फाटक के पुख्ता फौलाद का सबूत था। अच्छा हुआ जो हथेली से न बजाया वरना पूरा हाथ रोगन से लिप जाता।

फाटक और कोठी के मध्य काफी अन्तराल पसरा पड़ा था। इसी पर वे खीझ रहे थे। फाटक के दूसरे किवाड़ पर दो छोटे-छोटे हाथ बने थे। राह चलते कोई नटखट शरारत कर गया होगा। उन्हें लगा जैसे वे हथेलियां उन्हें धीरज धरने को कह रही हैं। आलीशान कोठियों की ओर देखकर उन्हें अपना झोंपड़ा याद हो आता है—जिसकी दीवारों पर बरगद के छोटे-छोटे पेड़ उग आए हैं। ईंटें इधर-उधर खिसक गई हैं। एक बड़ी दरार उभरने लगी है।

सभी मास्टर ऐसी कोठियां क्यों नहीं बना पाते? उन्होंने अपने-आप से कई बार पूछा है। निरुत्तरित प्रश्नों की एक कतार अपने सामने खड़ी दिखाई देती है।

गुप्ता जी उनसे एक माह पहले शिक्षा के महकमे में भरती हुये थे, इस लिये सीनियर हो गये थे। ता-ज़िन्दगी यह फासला तय न हो पाया। असमंजस के दो पल थे, लेकिन पूरी ज़िन्दगी उन्हें गुप्ता जी से जूनियर रहने का अभिशाप दे गये थे। नौकरी करें या ससुराल की ज़िमीं-ढेरी की देखभाल करें, यह द्वन्द्व था।

इस स्थिति से वे समाज सेवा का अटल निश्चय करके उभर आए थे। पर तब तक गुप्ता जी एक महीना सीनियर हो चुके थे। तो भी उनका चित्त प्रफुल्ल था। यह अहसास ही काफी था कि वे नये-नये जन्मे राष्ट्र की नई पीढ़ी को विद्या-दान दे रहे हैं।

देश की प्रगति के लिये होनहारों को प्रेरणा दें···पूरी कौम का कायाकल्प हो। हिन्दोस्तान एक बार फिर सोने की चिड़िया कहलवाए। इसके निमित्त चाहे तन-प्राण दोनों चले जाएं···

पन्द्रह अगस्त सन् सैंन्तालीस को उन्होंने प्रतिज्ञा की थी—विद्या-दान धर्म है···विद्या-दान पूजा है···उनका मन इन्हीं तीन मनकों की तसबीह फेरता रहता। या फिर उनके कानों में मार्च करती हुयी टोली के बोल गूंज उठते—

नव-निर्माण के साथी हैं हम,
नव-प्रकाश की बाती हैं हम।
···लेफ्ट-राईट लेफ्ट···

ससुराल गांव का कोई व्यक्ति पूछता—'पंड्डी जी, सुना है आजकल मास्टरी करने लगे हैं?' सुनकर सीना धुख उठता उनका। जलती भाप का बगूला-सा उनके सिर को फाड़ कर बाहर निकलना चाहता।

'है कि नहीं मूरख। कोई पाप तो नहीं करने लगा।' मन ही मन वे बोलते। फिर अपने-आप को तसल्ली देते। यदि यह बोल न सहें तो देश आगे कैसे बढ़ेगा।

···आदमी में सहनशीलता होनी चाहिये···

···वाक् रजत है और मौन स्वर्ण···

···मूर्खों की कहनी का बुरा मत मानो···

उन्हें आर्य-समाज के साप्ताहिक सत्सग में दिये प्रवचनों के अंश याद हो आते। यही सोचकर मुखर होते—'नहीं भाई, विद्या मन्दिर में पुजारी हो गया हूँ।' सुनने वाला सकते में चला आता, फिर ठहाका मार कर कहता—'मज़ाक करते हो जीजा जी। वही बात तो हुयी।'

वे चेहरे पर और भी गंभीरता ले आते। 'एक कैसे भाई। मास्टरी शब्द व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है।' पर किस-किस को टोकते। लोगों को यही समझ नहीं आता था कि इतनी ज़मीन-जायदाद होते हुये भी कोई नौकरी करे तो क्यों?

उन्हें गुप्ता जी से कोई गिला नहीं है। फिर भी रिकार्ड की वर्तुल रेखाओं की तरह भीतर कुछ दरारें हैं, जहां चिन्तन की सूई टिकते ही टेढ़े-मेढ़े स्वर फूटने लगते हैं—'बड़ा खुरांट आदमी है। जहां एक लगे वहां दस लगाता है। पैसे की इतनी धुन कि राम भजो।' और जब गुप्ता जी अपने रसूख से हैडमास्टर बन गए और वे खाली मास्टर ही रहे तो घुटे स्वर में उनके मुंह से इतना ही निकला—'हमने तो बस देश-सेवा का व्रत लिया हुआ है··· फल प्राप्ति की ज़रा इच्छा नहीं। मजाल है कभी मन मैला किया हो इन बातों पर। निःस्वार्थ सेवा से बढ़कर कोई सेवा है भला?'

जितनी जल्दी कुन्तो ब्याहने योग्य हुई उतनी जल्दी उनके बालों का रंग भी न उड़ा था। बिजली चमकते ही कुकुरमुत्ते की तरह उसकी जवानी निकल आई थी। धरती और

नारी में कितनी समता है—हरियाली और कुकुरमुत्ते, यौवन और समय—बस। कुन्तो के यौवन को उन्होंने कभी गंभीरता से न लिया था। वह सामने पड़ती तो नज़र फिसल कर ज़मीन पर खुब जाती। उत्तरदायित्व जिसे वे निभा नहीं पा रहे, मौन रह कर भी प्रतिक्षण मुखर हो रहा है। अपनी बेटी की दीप्ती सह नहीं पाते। जी चाहता है गर्दन फेर लें आंखें मूंद लें। लेकिन बेचैनी और बढ़ जाती है।

उन्हें आशा थी कि उनका साफ-सुथरा जीवन सामाजिक प्रतिष्ठा दिला कर मुफलिसी की मनहूस छाया मिटा देगा। कई खरे वर मिल जाएंगे—जिनसे कुन्तो के लिये जंचता-सा एक चुन लेंगे। क्या जोड़ी होगी—प्लास्टिक के गुड्डे-गुड्डी-सी। जिस घर वे रिश्ते की आस करके जाते—वहीं तमाम घर वाले उन्हें घेर कर बैठ जाते। वे सभी की व्यक्तिगत उलझनें सुलझाते, राजनीतिक जिज्ञासाएं शांत करते, सामाजिक समस्याओं के समाधान देते। ज्ञान कर्म की ऐसी चर्चा चलती कि लगता सुख-सागर में तैर रहे हैं। जिह्वा पर सरस्वती विराजमान हो जाती। जीव, ब्रह्म, माया, सद्-चित-आनन्द, जड़-चेतन की गहरी चर्चा में अपना-आप भूलने लगता।

जब घर वाले उन पर अपनी पोती, दोहती के लिये कोई वर देखने का जिम्मा डालते तो जैसे उनकी सुध लौटती। घर से वे भी इसी चिन्ता में सिर में उंगलियां खोंसे निकले थे पर अब निःस्वार्थ कर्म का इतना भाषण देने के बाद कुन्तो की बात कैसे चलाएं।

'आप पर रही तो लड़की घर बैठी बूढ़ी हो जाएगी।' पंडिताइन खीझ उठी थी उस रोज़। फिर वे बिना कुछ खाए-पिए अल-सुबह निकलीं और दोपहर को लड़की के लिये 'थाऽर' ढूंढ कर लौटी थीं। वे खुश थे। कितनी बड़ी चिन्ता दूर कर दी 'धर्मयानिये' तूने। मन ही मन उन्होंने पत्नी को धन्यवाद दिया। लेकिन वे दूसरे दिन भी गंभीर बनी रही थीं। उनसे कुछ कहे-पूछे बिना उन्होंने थेह् बेच डाले। भावी के सपनों का गला दबते देखकर वे चुप साधे रहे थे। कभी सोचा था 'रटैर' होने पर खेती-बाड़ी करेंगे। पर वक्त के तकाज़े का जुल्म कि चीख गले तक आई हुई है—लेकिन उफ तक नहीं किया जाता।

कुन्तो की ओर देखते ही वे हर वाहियात चीज़ से समझौता करने के लिये राज़ी हो जाते। गांव वाली हवेली मलवे के भाव बिक गई थी। आज रहती तो लाख रुपये डब्बल बटते। लेकिन ज़रूरत वक्त को उसकी पूर्ण नग्नता में उभार देती है।

महंगाई सुलेआं की तरह बढ़ गई थी—हां, टिड्डी दल की तरह, सुरसा के वंश की भांति। लेकिन तनखा तालाब में सड़ते पानी की तरह एक ही जगह स्थिर है और उसमें जी रही छोटी-छोटी मछलियां लगातार सहक रही हैं...

पंखे की फिजूल-खर्ची समझ कर उन्होंने उसे आधे मूल्य पर बेच डाला था...बिजली की किफायत ही सही। बिल कम आने लगा था। पर गर्मियों में पसीने के कारण जब शरीर तड़पता, उनका ध्यान नगी छत पर बिच्छू के डंक की तरह खड़ी नंगी खूंटी की ओर खिंच

जाता—जहां कभी हवा की चक्की घूमा करती थी। छाती में जैसे कोई गर्म-गर्म धातु उतर जाती। हवेली बिकने की बात याद आते ही निःश्वास निकल जाता···

स्मृति में गुप्ता जी लौटते हैं। कितनी शानदार कोठी है। जाने कहां उन्होंने यह खजाना गाढ़ रखा था। सोचते-सोचते उनकी नज़रें बगीचे में लगे तराशे हुये वृक्षों पर पड़ीं। मन खिल उठा।

'बजर' पर उंगली रख दी उन्होंने। 'भाई गुप्ता जी ने पूरा रहन-सहन अंग्रेज़ों वाला कर लिया। देखो क्या विलायती चोंचले हैं। इधर उंगली रखो, उधर आवाज़ सुनो।'

अचानक उनकी नज़र फाटक के कब्ज़ों वाले कोल्ले पर टंकी तख्ती पर पड़ी—बी-वेयर ऑफ डॉग्स। वे दो कदम पीछे हट कर खड़े हो गए। शहरी कुत्ते भी बदमाश जीव हैं साले। कोई सीधा-सादा आदमी देखा नहीं कि गला फाड़-फाड़ कर दिल दहला दिया।

वे तहसीलदार साहब के साहबज़ादे को राष्ट्रभाषा पढ़ाने गए थे। दबे पांव अंग्रेज़ी नसल के पिल्ले ने आकर उनकी टांग नोंच ली। छूटने के प्रयत्न में झक सफेद धोती चिर गई थी। उसी दिन से अंग्रेज़ी कुत्तों से उनकी ठनने लगी। आर्य-सभ्यता पर म्लेच्छ आक्रमण, तब उन्होंने ऊपर किसी बड़े नेता को खत लिखा था—लम्बा खत, जिसका शीर्षक सुर्ख सियाही में था—'भारतीय वनस्पति और पशुधन खतरे में।' इसमें उन्होंने प्रकृति के विजातीय तत्वों से लेकर, संकर उपजातियों तक राष्ट्रीयता के विकेन्द्रित होने की बात पर विस्तार से लिखा था। इन सब खतरों से बचने के सुझाव भी दिये थे उन्होंने। और एक सुझाव यह भी था—"विदेशी कुत्तों का आयात बंद किया जाए।"

"···हमला सरहदों से थोड़े होता है। आजकल उसके ढंग बदल गए हैं यह अंधा-धुंध आयात हमें कहां पहुंचाएगा···स्वदेशी कुत्ता भी सभ्य है कम से कम वह गुर्रा कर झपटता है···वाह री प्रकृति कुत्तों में भी भारतीयता की भावना। ललकार कर काटने का शौर्य··· इत्यादि।"

भीतर जाने कौन-सा कुत्ता हो। अनागत आपदा की सोच कर ही उन्होंने धोती को कसा था। आप कुत्ते का मुकाबिला करने के लिये तैयार होइये और ऐन वक्त पर यह धोती धोखा दे जाएगी। तहसीलदार साहब की कोठी वाली घटना एक बार फिर उनकी आंखों के सामने घूम गई। तब कितनी शर्मिंदगी उठानी पड़ी थी। तहसीलदारिन और दूसरे सभी तो हंसने लगे थे। वक्त पर साली हर चीज़ अपनी जगह से खिसक जाती है। अज्ञात की प्रतीक्षा में ज़रा-ज़रा स्खलित होना जैसे अब नियति बन गया है।

छाता बगल से निकाल कर उन्होंने हाथ में ले लिया। बजर हज़ारों भिड़ों जैसी बे-ज़ायका आवाज़ बिखेर रहा था।

ठल्ल-ठल्ला करके किवाड़ खुले। 'ठहरो बदमाशो' गुप्ता जी हाथ में सोटी पकड़े छापामारों की तरह प्रकट हुये थे।

'ओए-होए। शर्मा जी आप।'

गुप्ता जी का रौद्र फिर शांत रूप देखा तो समझ गए, ज़रूर लगातार घंटी बजा क
उन्होंने कायदे का उल्लंघन किया है।

'सारा दिन लड़के घंटी बजा-बजा कर तंग कर देते हैं। पल भर आराम से टिकना
हराम हो चुका है। ऐसे जानवरों की बस्ती में आ बसे हैं कि पूछो मत।'

शर्मा जी ने छाती में सांस भरी। एक नासिका चालू थी। मन में आया कहें-
अब चाहे इन्हें जानवर कहो। पर जब से शहर का विकास इधर होने लगा है अमीर लोग
झोंपड़े खरीद कर अज़ीम-उल-शान कोठियां खड़ी कर रहे हैं। कुछ दिनों में तेरा हज़ारों क
बंगला लाखों का हो जाएगा। कहने को बात तो खरी थी लेकिन गुप्ता जी बोलना बंद करें
तब न। और वे कहे जा रहे हैं—'फाटक पर परसों रोगन करवाया था। पर रात को दल्लें
ने गुप्त अंगों के नाम-कुनाम लिख डाले। पूरा फाटक वात्स्यायन का पन्ना हो गया।'

'अच्छा !' शर्मा जी चौंक उठे जैसे। भौहें माथे पर जा चढ़ीं।

प्रिंसीपल ने शिक्षा निदेशक के टिक्के जयंत को पेशाबघर में उल्टी-सीधी बातें लिखं
पकड़ा था, उसी महीने उसका ट्रांस्फर आर्डर चला आया। फिर आया एक अलग सन्दे
शर्मा जी के नाम।

उस दिन खादी का कुर्ता और गांधी टोपी ड्राई-क्लीनर से प्रेस करवा कर उन्होंने पहं
थे। क्या पता खाली कुर्सी पर प्रमोशन हो जाए। जाते-जाते वे गुप्ता जी को सुनाते गए थे
उनका चेहरा उतर गया था। शर्मा जी भी यही चाहते थे · गुप्ता जी जान जाएं हैडमास्टर
और प्रिंसीपल के रुतबे में क्या फर्क है।

उनकी अभिलाषाओं पर कोहरा गिरा था। दूर-दराज़ के किसी गांव से कोई छोकर
प्रिंसीपल बन आया। इस कोहरे पर उन्होंने आज तक सुने तमाम गलीज़ शब्द दर्ज
कर दिये थे।

ज़िंदगी के किसी पृष्ठ पर हर आदमी भीतर की विकृति को बाहर उंडेल देना चाहता
है। कोई वक्त ही ऐसा होता है—कहते हुये उन्हें अपनी जीभ लड़खड़ाती महसूस हुई।
कोहरे से लिपटी उंगलियां जैसे बर्फ की छड़ें बन गई थीं।

'क्या कहें ··इसीलिये आज फाटक पर रोगन कराना पड़ा। देखना रात को फिर कोई
सिर-फिरा अपनी विकृतियों की तफसील लिख जाएगा।'

शर्मा जी को याद आया अभी-अभी फाटक पर छपे हुये धीरज बंधाते दो हाथ उन्होंने
देखे थे। उधर ध्यान खींचने से गुप्ता जी को दुःख होगा, यही सोचकर वे इसका ज़िक्र टाल
गए। बोले—'रात जाग कर आप इसकी रखवाली करेंगे ?'

'नहीं शर्मा जी, बिजली का तार लगा देंगे। जो छुएगा खुद चिल्लाएगा और पकड़ा
जाएगा।'

'कोई मर गया तो ?'

'जाए जहन्नुम ।'

शर्मा जी क्षण-भर को स्तब्ध हो आए । सोचा अगर आज दिन में भी तार लगा होता तो चन्द क्षण पहले वे भी जहन्नुम सिधार गए होते—दस्तक देते हुये । गुप्ता जी को उन्होंने हैरानी से देखा ।

'जहन्नुम कैसे जाए जी ? इन्हीं में से कुछ देश के होने वाले नेता होंगे ··कुछ नागरिक···'

'नईं, एक मिनट, नीति की बात है । क्या कीमत होगी रोगन के डिब्बें की ? पच्चीस-तीस से कम नहीं । अब तेरे होनहार नेताओं-नागरिकों ने अपनी ग्रंथियों को गीले रोगन पर उतारा तो मुझे एक और डिब्बा लाकर फेरना पड़ा । अब इनके लिये जहन्नुम न मांग कर जन्नत की दुआ करूं ।'

शर्मा जी को हमदर्दी होने लगी । 'वो तो आप ठीक कहते हैं । पर शरारती बच्चों को दंड देते समय हम अपने अधिकार से बाहिर नहीं जा सकते ।' कहते-कहते शर्मा जी की जीभ तालु से चिपकने लगी । गुप्ता जी के मुंह पर व्यंग्य-भरी मुस्कान खेल गई थी ।

तभी सांवले रंग का तरुण दहलीज के पास खांसा था । शर्मा जी ने पहचाना, मंगेराम था । हाथ में फलों का लिफाफा और मिठाई का डिब्बा लिए । दोनों वस्तुएं गुप्ता जी को पकड़ा कर उसने हाथ जोड़ दिए । शर्मा जी धुख उठे । उन्हीं का शागिर्द उन्हीं की अनदेखी कर रहा है । नमस्ते तक नहीं···गज़ब है ।

'मंगेराम ये क्या लाया है ?' गुप्ता जी ने पूछा ।

'साब के महकमे में जगह मिल गई है । सोचा मुंह मीठा करवा दूं ।'

'अरे भई, तब तो मुबारिक लो ।'

'मुबारिक तो आपको है । आपकी सिफारिश के बगैर यह जगह मिलना मेरे लिये सपने में भी दूभर था ।'

'ले तोड़ा बिछा और बैठ जा ।' गुप्ता जी ने सीमेंट के खाली बोरू की ओर संकेत किया ।

'नईं मास्टर जी, कुछ काम पड़ा है । फिर आऊंगा···अच्छा ।' दोबारा उसने हाथ जोड़े और चला गया ।

शर्मा जी, मंगेराम की उपेक्षा से उभरे । 'इसका छुआ आप खा लेंगे ।' उनके पूछने में अविश्वास था ।

'आप किस पिंजरे में रह रहे हैं, शर्मा जी । अब वे बातें कहां ?' अपने लिये पिंजरे का प्रयोग सुनकर उन्हें धक्का लगा । लेकिन अपने साथ हुई हर ज्यादती से उन्होंने कोई न कोई सबक जरूर सीखा है ।

उस रोज मंगेराम को पीटा था । यह सोच कर कि 'मड़े' की जिन्दगी सुधर जाएगी । लेकिन स्थानीय 'ढोल का पोल' मार्का अखबारों ने इस बात पर धमाकाखेज़ वक्तव्य लिख

डाले। राष्ट्रीय शिक्षक की सम्मान सूची में नाम आते-आते रह गया। प्रिंसीपल ने फाई पर सख्त रिमार्क्स लिख भेजे थे। आइंदा किसी को दंड नहीं देंगे—उन्होंने प्रण कर लिया।

'खैर-खैर बिजली का करेंट न सही। रात को कुत्ता खोल देंगे। डाकी अंधेरे में गुज़रने वालों को बख्त डाल के रख देगा।'

शर्मा जी को कुत्ते के प्रसंग से दिलचस्पी न थी।

'प्योर अलसेशियन ब्रीड है'—गुप्ता जी फ़ख्र से सुनाते चल रहे थे। 'मैं बुलाता हूं उसे। डाकी ! डाकी !!'

शर्मा जी को लगा शरीर में झुरझुरी-सी दौड़ गई है। हथेलियों में भय की सूइयां चुभ गई हैं। बोले—'रहने दें, जानवर है बेचारा। कहीं छिछड़े खाकर पड़ा होगा। इससे हमदर्दी का सलूक करना चाहिये।'

डाकी खूंटे से बंधा गुर्राने लगा था। शर्मा जी को कोफ्त होने लगी। यही आदमी आर्य जाति की श्रेष्ठता की तमाम दलीलों को फासिस्ट विचारधारा कहता है। लेकिन अलसेशियन कुत्ते की बात पर नाज़ियों से आगे निकल जाता है।

नया बंगला देखते-देखते सारा शरीर ऐंठने लगा था। हर कदम पर आंखें चुंधिया जातीं···फिर वे अपने आपको सिकुड़ते हुये महसूस करने लगते। ड्राईंग रूम तक पहुंचते पहुंचते बौनेपन का अहसास उन पर पूर्णतया हावी हो चुका था। गुप्ता जी का शरीर समन्द उलांघन से पहले हनुमान की तरह भीमकाय होता दीखने लगा। छः कोनों का ड्राईंग रू जैसे शाही महलों का कांफ्रेंस हाल हो। छत पर छः झाड़-फानूस लगेंगे। इस कोने मरकरी लैम्प लगेगा। उस दरवाज़े के साथ लायब्रेरी होगी। सीढ़ियों के साथ मियानी होगी उधर रोशनदान होगा, जिससे सांझ की लाल रश्मियां आकर झाड़-फानूसों पर नन्हे-नन्हे सूरज बन खिल उठेंगी।

दीवारों की ऊंचाई-मोटाई का खुलासा सुनते-सुनते शर्मा जी का सिर चकराने लगा था लगा इस नीरस लेक्चर में असली मुद्दा छूटता जा रहा है। पर क्या करें, सीधे मुंह फा कर बात नहीं कही जाती।

'सुन रहा है।' शर्मा जी को सकते में देखकर गुप्ता जी ने कहा—'आ बाथरूम भी दिखा दूं। टब, फव्वारे, हर माडर्न सुविधा '

शर्मा जी हें-हें करते हंसने लगे। 'बस बहुतेरा देख लिया। बड़ा खूबसूरत मकान है। अब बाकायदा 'चट्ठ' कर दें।'

'नईं शर्मा जी, मैं इन बातों का कायल नईं हूं। दो अपाहिजों को रोटी खिला देंगे। यज्ञ हो जाएगा। सुनिये आप भी भोजन यहीं पाइयेगा।'

'हें-हें घर की बात है। यहां खाया, वहां खाया।' भीतर से शर्मा जी कोयले की तरह फुंक गए। हमें भी अपाहिजों में शामिल कर दिया बेटा।

जिस जरूरत ने यहां तक लाया था वही समझाने लगी। छुटपन की दोस्ती है। इसीलिये बिना नापे-तोले शब्द कह गया है। असल में बातें उतनी बुरी तरह कही नहीं जातीं जितना कटु हम उनमें सूंघने लगते हैं।

अब बौनेपन से कैसे उभरें? कैसे मतलब की बात पर आएं? इसी भूमिका को तलाशते-से बोले—'घर बन गया है, अब वक्त-बेवक्त चक्कर लगाया करेंगे···'

'जरूर-जरूर, पर बे-वक्त···?'

शर्मा जी गुप्ता जी का मुंह ताकने लगे। सहसा बाहर रेहड़ा ठहरने की आवाज़ हुई। 'मैं आया', कह कर गुप्ता जी लान में निकल गये। शर्मा जी बिना किवाड़ों की खिड़की से देख रहे थे। रेहड़ा सीमेंट से भरा था। ऊपर दो व्यक्ति थे···एक मैले-कुचैले कपड़ों में, दूसरा सफेदपोशी का इश्तिहार।

'कहां से आया है भाई?' गुप्ता जी ने पूछा।

'मैं लाया हूँ बाऊ जी।' इश्तिहार बोला—'साब से कहिएगा रामदयाल पहुंचा गया था। वे तो कहते शर्म महसूस करते हैं। लेकिन इतना परायापन ठीक नहीं। हम इस वक्त काम न आए तो कब आएंगे। मकान बनाते वक्त बड़े-बड़े धन्ने सेठ तौबा बोल जाते हैं। अच्छा, बाऊ जी, नाम याद रखियेगा—रामदयाल···'

गुप्ता जी का चेहरा दमक उठा—'काम कहां लगा रखा है?'

'इस वक्त तो पुल पर है। कुछ दिनों में सड़क पर चले आएंगे—डामर-बजरी बिछाने के टेंडर भर रखे हैं।'

'अच्छा-अच्छा। सुन, तू कुछ ड्रमों का इन्तज़ाम कर सकेगा? आजकल पानी की बड़ी दिक्कत है। तामीर में पानी नहीं होगा तो काम कैसे चलेगा?'

'ठीक कहते हैं। तराई से सीमेंट लोहा, नहीं तो गोबर···' मैले कपड़ों वाले कोचवान ने कहा।

'इतना काम न कर सका तो रामदयाल और किस दिन काम आएगा। कल सवेरे चार ड्रम पहुंच जाएंगे बाऊ जी।'

शर्मा जी समझ न पाए कि बातें इतनी घनिष्ठता कैसे पकड़ती जा रही हैं और सफेदपोश घड़ी-घड़ी अपना नाम क्योंकर सुना रहा है। यह जाएगा कब? और कब कह पाएंगे वे अपनी बात।

बाहर सीमेंट उतर रहा है। उन्हें अपने झोंपड़े का 'बनेरा' याद हो आता है। पानी की टंकी सिम रही है। सीलन दीवार तक आई रहती है। 'भाद्रो' महीने की बरसात भीतर छोटे-छोटे सरोवर स्थापित करती है सो अलग। सीमेंट नहीं मिलता। लेकिन यहां कोई कमी नहीं। इसीलिये हवेली पुख्ता किले का आकार ग्रहण करती जा रही है। गुप्ता जी भीतर लौट आते हैं। शर्मा जी खिड़की से हट कर सीमेंट और मिट्टी से सनी कुर्सी पर बैठ

गए। बाहर निकल रहे रेहड़े की चूलें च्रीं-चिर, च्रीं-चिर की आवाज़ों के गुंजल बिखेर रही थीं।

'तो मैं कह रहा था वक्त बे-वक्त देख लेना चाहिए'—अधूरी बात को छूटे सिरे से पकड़ लिया गुप्ता जी ने—'जब से हरीश साहब बना है बड़े-बड़े रईस और अफसर आने लगे हैं। उनकी सारी खातिरदारी मैंने संभाल रखी है। दौड़-धूप करते दिन निकल जाता है। फिर एक कोने में लुढ़का रहता हूं। हरीश के पास इतना अवकाश कहां कि अपने दोस्तों को छोड़ कर बाप के दोस्तों की तवाज़ा करे इसलिए···'

भरम के कांच पर दरारें उभर आई हैं—फिर भी पूर्णतया बिखरा नहीं, खड़ा है। इन कोरे बोलों का और कौन अर्थ धर कर मन को भुलावा दें। इसे मखौल समझ कर बुरा न मनाने का आभास देते वे पूछते हैं—'मकान कब तक बन जाएगा?' प्रश्न के साथ जुड़ी व्यर्थता का अहसास कचोटने लगता है—मानो अपने-आप से पूछ रहे हों—कौन भड़भूंजा था वह जिसने एक दिन राष्ट्र-सेवा का व्रत धारण किया था। जिन विद्यार्थियों के 'उज्ज्वल' भविष्य में उन्होंने देश की प्रगति का सपना देखा था—उन्हें फटे-चिरे कागज़ों की तरह सड़कों पर लोटते देख रहे हैं। कहीं बूट चमकाते मिलें तो उनका मन भर आता है। उनके सपनों का महल शुरू में ही खंडहर बन गया। उस इमारत की ईंटें यही बदनसीब लड़के थे। जन-आरण्य में झाड़-झंखाड़ों से घिरना उनके जन्मते ही तय हो चुका था।

'तू इसे मकान कहता है। पर यह आफत का कुंआ है। एक बार इसमें कूदने की गलती करने पर बाहर आने का रास्ता नहीं सूझता। रुपये पानी की तरह बहाने का नाम इमारत खड़ी करना है।'

'हरी के रहते आपको क्या चिन्ता?'

'ओ भाई, अब हरी मत कह। वह बड़ा अफसर हो गया है—डी० साहब। देख न साहब को सरकारी कामों में सिर खुजलाने की फुर्सत नहीं···इसलिये इमारत का काम भी मेरे सुपुर्द··· तो बता रुपया कहां से आवे। बड़ी मुश्किल है। जवानी के जमा चार पैसे इस टैम काम आ रहे हैं।'

शर्मा जी अझिप आंखों से उन्हें देखते हैं। कहां से जोड़ा होगा इतना रुपया इन्होंने। हरीश इतना बड़ा अफसर कैसे हो गया? अपना राजेश मास्टर ही क्यों बना? इन बातों को सोचते-सोचते वे फिलासफी की गुफा में सिर दे लेते हैं। शायद पिछले जन्मों के कर्म ही इस जन्म में सामने आते हैं।

जो कसैले तजुर्बे कुन्तो का वर ढूंढने पर हुये थे—वही रुक्मणि के जवान होने पर होने लगे। अबकी कड़कती दुपहरी में पंडिताइन अपने समधियों की तलाश में निकलती और शाम को लौटती। उस दिन पंडिताइन कुछ जल्दी वापिस आई थी।

आते ही खाट पर गिर पड़ीं। वे घबरा उठे थे। शायद लू लग गई है। उन्होंने चेहरे पर पानी की बूंदें डालकर अंगोछे से हवा की। वे बुखार में झुलस रही थीं। उन्होंने जल्दी

से आंखें खोलीं। शर्मा जी छत पर पंखे के कुंडे को देख रहे थे। अधमुंदी आंखें देखकर उन्होंने पत्नी को धीरज बंधाया 'हौंसला रखो, मैं डाक्टर बुला लाता हूँ।'

'रिश्ता मैंने ढूंढ लाया भलेआ-लोका! अब रुपये पैसे का प्रबन्ध तू कर।' क्षीण-सी आवाज़ ने उन्हें वरज दिया—डाक्टर को फीस कहां से दोगे? वे न आगे जा पाए और न पीछे मुड़ सके। खंभे की तरह एक जगह गड़े रहे। रुपया वृक्षों पर उगता होता तो दो-चार वृक्ष उन्होंने भी रोप लिये होते।

समधियों के घर से लड़कियां आकर रुक्मणि को देख गईं थीं। वो लोग शादी के लिये उतावले थे। यही देखकर शर्मा जी ने सन्देश भेजा—दो कपड़ों में ही बिटिया को विदा कर पाएंगे। उत्तर आया—'सारी उम्र जोड़ते रहे हैं, इतनी हल्की बात न करें। आजकल मास्टर लोगों के घरों में क्लासें लगती हैं। फिर अब तो राजेश भी कमाने लगा है…'

वे तिलमिला कर रह गए। सोचा कर्ज़ उठाएं। लेकिन गिरवी क्या छोड़ें। बस अपना शरीर ही है जिसे कव्वे भी नहीं खाते। आ जा कर गुप्ता जी पर भरोसा पड़ता है। इसी वास्ते उनके पास आए हैं। लेकिन कहें कैसे? और-और बातों का मलबा असली बात को दबाता जा रहा है।

संजीदा दिखने के लिये उन्होंने कुर्सी पर करवट बदली। फिर गुप्ता जी के मुंह को देखकर छत की ओर देखने लगे।

खांसने का उपक्रम किया। गुप्ता जी ने उनकी ओर देखा तो उन्होंने सन्नाटा तोड़ने के लिये उपयुक्त वाक्य तलाश लिया।

अकस्मात् बाहर लोहे के फाटक खुले और हरे रंग की कार पोर्टिको में आ रुकी। कार से कुछ आदमियों के उतरने का अहसास उनकी चेतना को खुदबुदा गया। वाक्य बिसर गया। उसी समय कुछ लोग लापरवाही से डग भरते ड्राइंग रूम में चले गये। कुछ क्षणों बाद हरीश कमरे में आया। शर्मा जी को ज़रा-सी गर्दन हिला कर 'विश' किया। कहीं देखा है—इस भाव का प्रभाव देती खामोशी।

'कोई काम है बाऊ जी?' गुप्ता जी ने नौकरों जैसी हलीमी से पूछा।

'पापा, गेस्ट आए हैं। फ्रिज खाली है।' इतना कह कर हरीश तेज़ी से दोस्तों में चला गया। गुप्ता जी ने 'किल्ली' पर टंका झोला उतारा। फिर दूसरे कमरे से पर्स उठा लाए।

बात कही न जाएगी अब। रुखसत होना बेहतर है—शर्मा जी ने सोचा।

'अभी मुंडू कोई नहीं रखा।' गुप्ता जी झोला लपेटते हुये घिसे जूतों में पैर डालने लगे। 'विदेश से ट्रेनिंग खत्म करके जब से आया है—अपना काम खुद करो—इसी धुन में मग्न है। अब मुझे भी आदत हो गई है…' कहकर गुप्ता जी खी-खी करके हंस पड़े। 'तुम गुमसुम क्यों बैठे हो? बोर हो रहे हो? चलो बाज़ार हो आएं। इस उम्र में चलने-फिरने से रोटी पच जाती है…और गहरी नींद का मज़ा भी। बैठे-बैठे तो गठिया हो जाए…'

दोनों बाहर निकले। शर्मा जी ने कार को सरसरी नज़रों से देखा। 'हरीश बाबू की है ?' इस बार उन्होंने बाबू शब्द पर अधिक जोर दिया।

'नहीं, उन्होंने बुक करवा रखी है। चार-छः महीनों में टर्न चली आएगी। यह वाली दोस्त की होगी।'

शर्मा जी को लगा, गुप्ता जी वफादार नौकर की तरह मालिक की चर्चा छिड़ते ही खुश होने लगते हैं।

'हरीश की मां आप जानते हैं इसके जन्मते ही मर गई थी। चिड़िया के नवजात बच्चे की तरह इसे रूई के फाहों में रखकर पाला था मैंने।' वे ज़िन्दगी की पोथी से कई रूखे पृष्ठ बांचते चलते हैं। शर्मा जी मन न होते हुये भी ऊं-हूं करते चलते हैं। विचार जैसे झंझावात ढो रहे हैं। लगता है कहीं भयंकर बाढ़ आई हुई है। इसमें वो श्यामपट भी बह रहा है जिस पर पूरी ज़िन्दगी उन्होंने जीवन के प्रश्न हल किये हैं। ताज्जुब है श्यामपट से एक-एक हिन्दसा उतर कर सैंकड़ों की संख्या में बंट जाता है और स्वतंत्र होकर तैरने लगता है— कागज की नौका की भान्ति। असल में यह हिन्दसों की बाढ़ है—जिसमें पूरा गणित रेज़ा-रेज़ा होकर बिखर गया है···

उन्होंने अपने जीवन का गणित इकाई से शुरू किया था···यह गणित मान्यताओं का एक सफर था। मीलों चलने के बाद उन्होंने देखा वे शून्य हो गये थे—शून्य मील पत्थर। यहां से पीछे का सफर उन्हें अंधेरे गर्त में ले जाता है, जहां 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है'—पंक्तियां दफन हैं।

इस सफर के कुछ दूसरे खिलाड़ी शून्य से इकाई, दहाई, सैंकड़ा हो चुके हैं। गुप्ता जी के सामने वे अपने-आप को पराजित मोहरा समझते हैं; जोकि विशाल परिधि के गर्त के किनारे अवाक्-स्तब्ध खड़ा पराजित सीमांतों की ओर टकटकी बांधे है। वक्त सांझ का सूरज बन के बाढ़ के उच्छाह में कूद कर एकलीन हो गया है। क्या इस अक्स में उनकी कुंठित रूह छटपटा रही है—वे समझ न सके।

वाईन शाप पर रुकते ही गुप्ता जी की कारुणिक आवाज़ नितांत कारोबारी हो आई। 'एक बोतल स्काच, भाई।'

लिफाफे में बोतल डाल कर दुकानदार ने सौ के नोट से बकाया लौटाया। अंगुली से थूक लगाकर गुप्ता जी ने रुपये गिने।

'भई, कुछ दिन हुये ये सत्तर में ले गए थे।'

'आप जी, इस भाव पर जितनी चाहे ला दें। यह भाव मिलिट्री कैन्टीन में था, वर्ष भर पहले। अब वहां भी रेट चढ़ गए हैं।'

'चल यार ज्यादा नहीं, सिगरेटों की डिब्बी के लिये ही पैसे छोड़ दे। बाऊ साहब जब भेजते हैं, मैं सीधे इसी दुकान पर चला आता हूं। पक्के ग्राहक हैं।'

'स्काच में गुंजाइश कहां है साहब ? इस भाव मैं बिना सेल्स टेक्स के दे रहा हूं।'

'ठीक है भाई, जो मुनासिब समझे काट ले। अप्पन कौन खुद पीते हैं। डी० साहब के लिये है। पीने वालों को रेट भी मालूम रहते हैं। हमने छूई तक नहीं कभी। क्यों शर्मा जी ?'

शर्मा जी हें-हें करके हंस पड़े। याद आया कितनी बार सोचा है पंडिताइन को द्राक्षासव की एक बोतल सेवन करा दें। लेकिन हर बार यह इच्छा अगले महीने के सुपुर्द करके वे दूसरे झंझटों से निपटते रहे हैं।

लौटती बेर गुप्ता जी महंगाई की हाय-तौबा करते रहे। अब शर्मा जी को सूझा अपने मतलब की कही जा सकती है—बिना झिझक के।

गुप्ता जी ने जेब से एयरोग्राम निकाल कर लेटर-बाक्स में डाला। बोले—'सतीश की चिट्ठी आई थी, विलायत से। लिखा था, दफ्तर में ज़्यादा काम करना पड़ता है। घर का काम करने को नौकर नहीं मिलता···रोटी खुद पकानी पड़ती है···'

मोड़ वाली दुकान से सोडे की चार बोतलें और बर्फ के टुकड़े लेकर झोले में डाले। कुछ आगे जाकर बोले—'सोडे के साथ बर्फ फ्री मिलती है तो क्यों छोड़ी जाए। क्या पता फ्रिज में ट्रे जम गयी हो या नहीं।'

मौका देखकर शर्मा जी ने मक्खन लगाया—'बड़े होशियार हो।' फिर दूसरे ही सांस में सिर खुजलाते बोले—'अब देखो न, अपनी रुक्मणि का ब्याह है···'

'मुबारिक है भाई। कब जुड़ा है ?' पूरी बात सुने वगैर क्रम तोड़ डाला गुप्ता जी ने।

'दो महीने रह गये हैं। तीन दिसम्बर को बारात है।'

'मेरी मानो तो डोली वाले कहारों, पेट्रोमेक्स वाले और बैंड-बाजे वाले को अग्रिम देकर पक्का कर लेना। बाद में मौके पर दिक्कत होती है। महंगाई का ज़माना है, कीमत देकर चीज़ नहीं मिलती। कोठी का लैंटर डालने का वक्त आया, मार्कीट से लोहा-सीमेंट गायब। अब यह मत पूछो काम किस तरह निकला। लोग समझते हैं सब सरकारी स्टोरों से चला आया। अब दूसरों की दौलत और रसूख देखकर ईर्ष्या करने वालों का तुम्हें पता है। लोगों ने क्या-क्या बातें नहीं की। हरीश को मैं जानता हूँ। कलियुग में सत्यवादी हरिश्चन्द्र का अवतार समझ ले। आजके ज़माने में ऐसे लोगों का काफिया तंग रहता है।'

'सच्ची बात कही।' शर्मा जी ने तुरंत ताईद कर दी।

नुक्कड़ की दुकान से पनवाड़ी ने सलाम किया। गुप्ता जी उसके पास चले आए।

'दो पान लगाना मिर्ज़ा, गीली सुपारी। अब सख्त सुपारी चबाई नहीं जाती।' एक बीड़ा अपने मुंह में रखा और दूसरा शर्मा जी को दे दिया। 'जवानी का पला सरूर कभी इस उम्र में भी जाग पड़ता है। अब तम्बाकू वाला नहीं खाया जाता। अलबत्ता···'

पैसों के लिये जेब में डाला हाथ खाली बाहिर आ गया।

'तीस पैसे होंगे शर्मा ?'

शर्मा जी के मुंह से पान बाहिर आने लगा। टटोल कर केवल अट्ठाईस पैसे निकले।

'चलो दो पैसे कम सही। अपना शागिर्द है।' गुप्ता जी ने शर्मा जी का हाथ पकड़ा और चल पड़े। 'तो मैं क्या कह रहा था? हां, मकान बनाना शुरू किया मानो भिड़ों के छत्ते में हाथ दे दिया। इस जहमत से कैसे जान छूटे?' बोलते-बोलते वे काफी रास्ता तय कर आए थे।

शर्मा जी मन ही मन इस बात से हैरान हो रहे थे कि गुप्ता जी के शागिर्द भी उन फटे-चिरे कागज़ों में शामिल हैं जिनकी दिशा हवा को निर्धारित करती है। भूतकाल में वीरानगी थी, जो विरसे में कुचला हुआ भविष्य जीने पर बाध्य कर रही है। सुना करते थे मिर्ज़ा पढ़ाई में बड़ा तेज़ है। आखिर बेचारे को पान बेचने पड़े। यह क्या हो गया है हर कहीं। एक शानदार कैनवस पर ये भद्दे चित्र किसने बना डाले हैं?

तभी सड़क की दूसरी ओर से एक परिचित ने हांक लगाई—भई क्या मशिवरे हो रहे हैं लंगोटियों में?'

दोनों चलते-चलते रुक गए।

'सैर-सपाटे हो रहे हैं भाई और क्या।' गुप्ता जी तपाक से डट गए।

'शर्मा जी भीगे मौसम में भी पसीने से सराबोर हैं।' परिचित सामने वाली पटरी से बोला।

'भाई, शर्मा जी को रुपये की गर्मी है भीतर।' गुप्ता जी खिल-खिल कर उठे।

फीकी-सी हंसी हंस कर रह गए शर्मा जी। सोचा लौट चलें। लेकिन जाने कैसे गुप्ता जी की नीरस बातें सुनते लोहे के किवाड़ों तक घिसटते चले आए। अब कहने को कुछ न था।

'अच्छा चलता हूं गुप्ता जी।'

'ज़रा आराम कीजिए। फ्रिज का पानी पीकर जाइएगा।'

'नईं चलता हूं अब।'

'ऐं जी, आया कीजिए शर्मा जी।'

'हां, हां! जरूर।' मन में आया वे भी लौटते हुये गीले फाटक पर कुछ लिखते जाएं—अनाप-शनाप•••कुछ भी।

वापसी के लिये फाटक से मुंह परे करते ही बूंदें गिरने लगी थीं।

रुक कर उन्होंने छाता खोला और घर की ओर जाने लगे। हवेली से आगे बढ़ते ही कानों में डाकी के भौंकने की आवाज तेज़ कांटों की तरह चुभने लगी।

मुड़ कर नहीं देखा उन्होंने। फिर भी विश्वास था कुत्ता उन्हीं की ओर मुंह करके भौंक रहा है।

———

अब सांप मेरे साथी हैं

—राज कुमार शर्मा

एक सुबह बहुत शोर था
लोगों की निगाह में—
लाल पत्थर पर टिका
एक ऊंचा डण्डा था
ऊंचा उड़ता हुआ झण्डा था।
पत्थर लाल था
लोग खुशी से लाल हो रहे थे।

अचानक एक कबूतर उड़ा
मेरे सिर के गिर्द मण्डराने लगा
उसकी गुटरगूं में सिम्फोनिया धुन थी,
पंखों में उन्मादी उड़ान
वह मेरे सिर के गिर्द मण्डराता हुआ बोला—
बहुत ऊंचा उड़ सकता हूं मैं
क्या तुम मेरा साथ दोगे ?

अचकचा कर मैंने उसकी ओर देखा
उसकी चोंच, आंखों के गिर्द की लाल रेखा ने
मेरे रक्त को जैसे चुनौती दी हो, मैंने कहा—
मैं उड़ तो नहीं सकता
पर तुम्हारी उड़ान के पीछे भाग सकता हूं—
और हमारा अलिखित समझौता हो गया।

हम दोनों जवान थे
उसके पंखों में परवाज़ थी
मेरे पांवों में जान थी
हम साथ साथ उड़ते दौड़ते रहे।
इस तरह हम लगभग सत्रह वर्ष

उड़ते रहे, दौड़ते रहे
बीच बीच एक आतंक मुझे घेर लेता था कि
कब तक यूं ही निरर्थक दौड़ूंगा मैं ?
कि एक दिन सुबह ही उसने कहा—
देखो, मैं बहुत ऊंचे उड़ता रहा हूं
लगभग पूरा ग्लोब मेरी परवाज़ से नपा है
मैं चाहता हूं कि मेरे थके पंख
तुम्हारे शरीर पर गिरें
और कुछ समय के लिए ही सही
तुम्हें पूरी तरह ढांप लें।

मैं भोला-भाला
उसकी शर्त मान गया।
कुदरत का खेल कि
चमकीली बर्फ पर वह उड़ रहा था, कि
चांदी की तरह चमकने वाले उसके पंख
लहूलुहान हो कर गिर पड़े
उन पंखों को देख—
मैं हैरान हुआ
आंखें मींचीं। खोलीं। मींचीं। खोलीं—
लेकिन मैं स्वप्न-देश में न था
और मेरे चेहरे पर
चीखने से पहले की पीड़ा उभर आई थी।

निगाह उठाई तो देखा
वह ड्रैगन की फूत्कारों से झुलसता हुआ भी उड़ रहा था
उन निर्णायक क्षणों में
मैंने खुद को निहत्था पाया
कुछ भी न सूझा तो
पांव का जूता उठाया और फैंका
लेकिन देखते ही देखते
जूता भस्म हुआ और आग की लपटें—
मेरी ओर कौंधीं
साब, मैं खाली हाथ था
भागता न, तो क्या करता ? बेकार मरता।

खैर किसी तरह हम लौट आए
उसी पत्थर के करीब पहले की तरह
उड़ते हुए झण्डे के गिर्द वह भी मण्डराया
और मैंने भी उसे अपलक देखा
उन नुचे हुए पंखों की जगह से
लाल खून अभी भी झलक रहा था
पर उसकी आंखों में अब कोई दहशत न थी।

पर एक दिन आकाश साफ़ था
सूरज की तपिश पुरज़ोर थी
ज़िंदगी की गंध गमक रही थी
अचानक काली बावली आंधी उठी
और पूरा आकाश काले कन्टोप जैसा
मेरे सिर पर छा गया
मैं बौखलाया
पर तूफ़ान के बीच से
एक देवता-नुमा आदमी ने कहा—
तुम्हारा साथी थक चुका है, मैं ले जा रहा हूं।

मैं गिड़गिड़ाया…नहीं, नहीं, मैं अकेला रह जाऊंगा
उसे जैसे गुस्सा आ गया हो
थले से कुछ सांप निकाले और मेरी ओर फैंके
सांपों के साथ ही उसके शब्द लपके—
"ऊंचा देखकर दौड़ते हुए थक गए हो
अब जमीन देखते हुए
नये साथियों के साथ टेढ़े-मेढ़े भागो।"
'और डंक ?'
'डंक तुम्हारी नियति है।'
मैंने हताश निगाह से उसे देखा
पर वह तो अन्तर्धान हो चुका था
तब से, सिर्फ सांप मेरे साथी हैं।

आज की हिन्दी कहानी में विधवा नारी की नियति

—डॉ० अनिल गोयल

बदलते युगीन संदर्भों में नारी की भूमिका के आयाम भी बदल गये हैं। एक तरफ उसे दया, करुणा तथा ममता की अगाध प्रतिमा बन कर माँ, बहन तथा पत्नी की भूमिका निभानी पड़ती है तो दूसरी तरफ पुरुष की तरह कार्यशील नारी बन कर परिवार में संचालिका की भूमिका भी निभानी पड़ती है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानीकारों ने आज के इस परिवर्तित परिवेश में कार्यशील नारी की भूमिका को विविध रूपों में आंका है। कहीं तो उच्चवर्ग की नारी मात्र 'हॉबी' अथवा 'स्टेटस' के लिए नौकरी कर रही है और कहीं मध्य अथवा निम्नवर्ग की विवाहित, अविवाहित, तलाकशुदा अथवा विधवा नारी वैयक्तिक एवं आर्थिक कारणों से विवश होकर नौकरी करने को अभिशप्त है।

हिन्दी कहानीकारों ने कामकाजी विधवा नारी के रूप में प्रायः निम्न या मध्यवर्ग की ऐसी स्त्रियों का चित्रण किया है जो या तो पति द्वारा सम्पत्ति न छोड़े जाने अथवा सम्पत्ति पर रिश्तेदारों की नज़र हो जाने पर, उनकी दया अस्वीकार करके अपने पैरों पर खड़ी होने के लिए नौकरी कर रही हैं। सम्पत्ति विहीन विधवा को सन्तान के भरण-पोषण के लिए जो दुविधा सहनी पड़ती है उसका चित्रण मेहरून्निसा परवेज़ ने 'त्यौहार' कहानी में किया है। अनपढ़ अम्मा विवश है पर सामाजिक आक्षेपों के कारण न तो जकात लेने वालों में शामिल हो सकती है और न ही अच्छी नौकरी कर सकती है। फिर भी अम्मा को छोटी-मोटी नौकरी करनी ही पड़ती है क्योंकि 'नौकरी करके नहीं खिलायेगी तो किस ढूकने में ढांकेगी तीनों को ?'

'त्यौहार' की अम्मा एक पारम्परिक नारी के रूप में चित्रित हुई है जो वैधव्य को नियति मानकर जीवन व्यतीत करती है लेकिन 'नन्हों' (शिवप्रसाद सिंह) की विधवा अपने वैधव्य को नियति मानती है तथापि स्वावलम्बी होना आवश्यक समझती है। अपाहिज पति की मृत्यु पर वह न तो पुनर्विवाह करना चाहती है और न ही किसी की सहायता स्वीकारती है। यहां तक कि देवर रामसुभग द्वारा दिया गया मुंह-दिखाई का रूमाल तक लौटाते हुए कहती

है—'मैं कमजोर थी बाबू, भाग्य से हार गई। पर आज तो मैं अपने पैरों पर खड़ी हूँ। आज मुझे तुम हारने मत दो।'

यदि विधवा नारी की सन्तान हो तो वह अपने बेटे के बड़े होने की आशा में जीवन के दुरूह क्षणों की यातना को नियति मान कर सह लेती है। यह अवस्था विशेषतया उस नारी के लिए दुरूह होती है जिसे कुछ कमा के बच्चों का भरण-पोषण करना होता है अर्थात् बच्चों के लिए मां के साथ-साथ बाप की भी कमी पूरी करनी होती है। ऐसी नारी को सामाजिक परम्पराओं की अवहेलना करनी पड़ती है। रामदरश मिश्र की कहानी 'एक औरत : एक ज़िन्दगी' में नारी की इस यातना एवं विद्रोह-जन्य स्थिति का चित्रांकन हुआ है। विधवा भवानी अपने दो साल के बेटे के बड़े होकर परिवार के बोझ संभालने की आशा पर जीवन से लड़ रही है—'नहीं बाबा वह लड़का है—इससे दो साल छोटा। भवगान् जिया दें और आदमी बना दें, इसी आशा पर तो ज़िन्दगी से लड़ रही हूं•••।' ज़िन्दगी की इस लड़ाई में तन्मय भवानी लाज-शरम तथा समाज के कायदे-कानून भूल कर खेतों की रखवाली तथा दाने-पानी का काम-काज संभालने लगती है तो गांव की वृद्ध औरतें समझाती हैं—'बहू अभी तुम्हें शोभा नहीं देता इस तरह घूम-घूम कर काम करना। अभी नरेश को मरे कितने महीने हुए हैं और अभी कोदई को मरे कितने दिन हुए हैं। अरे, कुछ पूजा-पाठ में मन लगाओ, उसकी आत्मा को शांति मिलेगी।' परन्तु भवानी रूखे स्वर में उत्तर देती है—'हां, ठीक कहती हो, काका जी। मैं पूजा-पाठ में मन लगाऊं और गांव वाले मेरी खेती-बारी में मन लगावें और एक दिन पूजापाठ से जाग कर पाऊं कि मेरे सारे खेत पट्टीदारों के नाम हो गये और मैं अपने बच्चों को लिए भिखारिन सी रास्ते पर खड़ी रहूं। इससे उनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी न ?' सरल हृदया भवानी सुबह से शाम तक फिरकी की तरह नाचती, घर का काम, गाय को सानी-पानी, गोबर उठाकर खेत मे फेंकना तथा चर्खा कातने का काम करती और पुरानी मर्यादाओं के भंवर में न फंस कर खेतों की रखवाली को ही तीर्थ-व्रत जानने लगी—'नहीं काका जी, मेरे लिए तो ये खेत ही तीर्थ-बरत हैं। इन्हें छोड़ कर कहां जाऊं। साफ हो जायेंगे। और मैंने फूला तो सेवन्ती नदी में ही छोड़ दिया है, यही अपनी मां है।'

आंचलिक कहानीकार शैलेश मटियानी की कहानी 'कपिला' बाल विधवा नारी के द्विविधापूर्ण जीवन तथा स्वावलम्बन के प्रति उसके आग्रह एवं संघर्ष की कहानी है। कपिला ऐसी युवती है जिसका पति भरी जवानी में चल बसा था और वह समाज में हेय दृष्टि से देखी जाने लगी थी। किन्तु उसने उन सभी लांछनों की अवहेलना की जो विधवा होने के नाते उस पर थोपे गये और घर के काम-काज के अतिरिक्त पति के 'घोड़ों' को भी हांकने लगी।

अनपढ़ अथवा पढ़ी-लिखी विधवा स्त्रियां छोटा-मोटा काम-धन्धा करके अपनी तथा बच्चों की व्यवस्था करती हैं परन्तु नौकरी के बाद के क्षणों में, घर के नीरस वातावरण से शीघ्र ही ऊबने लगती हैं। इस ऊब से आक्रान्त है 'कछुए का खोल' (सुदर्शन चोपड़ा) की नायिका। नौकरी की थकानोपरान्त पतिविहीन घर उसे पोल्ट्रीफार्म की ब्रांच लगता है।

घर की 'मॉनोटनी' में उसे सास-ससुर, देवर-ननद के सम्बन्ध व्यर्थ मोहजाल की अनुभूति देने लगते हैं।

निःसन्देह पौराणिक परिवेश में जीती हुई विधवा नारी प्रवंचनापूर्ण जीवन के अन्तर्गत सुखद अनुभूतियों को खोकर अधिकारहीनता की स्थिति से त्रस्त होती रही है परन्तु आधुनिक विधवा पारिवारिक मोहजाल को त्याग कर अधिकार सुख चाहती है—'ठीक है, मेरे पति नहीं रहे, मगर मैं जब तक जिन्दा हूं, तब तक जीवन जीने का हक तो मुझे है ही। परम्परागत विधवा की सी मौत नहीं जिऊंगी। जिन्दगी की उस फिलासफी में यकीन नहीं मुझे। कितना बड़ा फ्राड है कि पुरुष की मृत्यु के बाद भी नारी उसके नाम का साइनबोर्ड बनकर जीती रहे।'

विधवा नारी के अन्तर में भी जीने की वही अभिलाषा होती है जो एक सामान्य गृहिणी तथा युवती में होती है। सामाजिक परम्पराओं के अनुसार सम्पन्न घराने की बहू-बेटी जब छोटी आयु में ही विधवा हो जाती है तो सामाजिक दायित्व को निभाते हुए वह दूसरी शादी करने में असमर्थ रहती है। किन्तु जीवन-यापन के अन्य साधन जुटाने में तो उसे व्यस्त रहना ही पड़ता है। एक ओर उसे अपने बच्चों के भविष्य की चिन्ता बनी रहती है तो दूसरी ओर अपनी स्थिति पर विचार करके उसकी कसक बढ़ जाती है—'मैं अकेली रहती-रहती ऊब गई हूं···। फिर अकेली रहना क्या अच्छा है? पता नहीं बाबू जी मेरे अकेली रहने पर ऐतराज क्यों नहीं करते···? कुछ तो सोचना चाहिए।'

भारत में विधवाओं के पुनर्विवाह की बातें काफी देर पहले आरम्भ हुई थीं किन्तु पारम्परिक समाज में आज भी इसका विरोध होता है। इन्हीं सामाजिक विरोधों को ध्यान मे रखते हुए शशिप्रभा शास्त्री ने 'धुली हुई शाम' जैसी कहानी की रचना की है। कहानी के अनुसार सांस्कारिक परिवेश में पली भारतीय नारी पहले तो स्वयं ही पुनर्विवाह के लिए राजी नहीं होती; दूसरे यदि वह अपनी मानसिकता बदलने को तैयार हो भी जाए तो अपने ही वयस्क बच्चे उसे उपेक्षा भरी दृष्टि से देखते हैं। 'धुली हुई शाम' की विधवा सीमा, सिन्हा से प्यार करती है क्योंकि उससे उसे सांत्वना, स्नेह एवं अपनत्व की प्राप्ति होती है। उसके अन्तर की चाह इन शब्दों में व्यक्त होती है—'चाहती हूँ आप कहीं चले जाएं, तब भी मैं अपने को अकेला महसूस न करूं। मुझे लगता रहे इस विराट फैली-फूटी दुनियां में मेरा भी कहीं कोई है, जो मुझे प्यार करता है, मुझे याद करता है, जिसे मैं जब चाहे अपने सुख-दुःख में बुला सकती हूं, मिल-भेंट सकती हूँ।' यद्यपि सिन्हा के साथ सीमा अपनी मानसिक व्यथा के परित्राण का सुख अनुभव करती है तथापि, 'दो बच्चों की मां के लिए यह सब अनुचित है' की अपराध-भावना उसके अन्तर को कचोटती रहती है। 'रात-दिन मन में द्वन्द्व उठता था—दो बच्चों की मां के लिए यह सब कहां तक उचित है? जो कुछ भाग्य में नहीं है, उसके लिए छटपटाहट क्यों?' लोभवश सीमा सिन्हा की तरफ झुकती है जिसका विरोध समाज तो नहीं करता पर उसके अपने ही वयस्क बच्चे शोभा तथा कृष्ण करते हैं। सिन्हा के प्रति बच्चों की घृणापरक दृष्टि देखकर सीमा सोचती है—'सिन्हा बाबू उसके कौन हैं भला?

केवल मात्र उसके पुरुष मित्र। पैसा और उच्च पद—दुनियां ने सब कुछ बर्दाश्त कर लिया, समाज ने सब कुछ अनदेखा कर दिया, पर बच्चे ? बच्चे तो मां की जान के दुश्मन ही बन गये। स्पष्ट कुछ न कहते हुए भी उन्होंने मां का जीना दूभर कर दिया।' बच्चों के व्यवधान से तंग आकर दांत किचकिचाते हुए सीमा कह उठती है—'कमबख्त क्यों पैदा हुए हैं, बड़े सुख दे रहे हैं न। आप तो कल को ऐश करेंगे, गुलछर्रे उड़ायेंगे, मां मजदूरिन बनी इनके लिए कमा-कमा कर रख जायेगी।' कहानी के माध्यम से लेखिका इस तथ्य की पुष्टि करने में समर्थ रही है कि कभी-कभार किन्हीं परिस्थितियों में मातृत्व भी कामुकता के समक्ष शिथिल पड़ जाता है।

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर यह अनुमान स्वतः ही लगाया जा सकता है कि वैधव्य आज की नारी के लिए ऐसी विपत्ति नहीं है जो उसे पति की चिता के साथ जलने को विवश करे अथवा टूटे हुए व्यक्तित्व को लेकर सम्बन्धियों की ओलती में जीवन के शेष दिन काटे। सामाजिक प्रतिबन्धों के फलस्वरूप यदि एक विधवा पुनर्विवाह नहीं करती तो किसी दूसरे के आगे हाथ भी नहीं पसारती। वह योग्यता के अनुसार कामकाज कर लेती है और इस प्रकार पति की अनुपस्थिति में परिवार को टूटने से बचाने में समर्थ प्रमाणित होती है।

———

अकादमी डायरी

- अपनी गौरवशाली परम्परा के अनुसार रंगमंच की प्रगति हेतु अकादमी के तत्त्वावधान में १३ दिसम्बर से १६ दिसम्बर १९७९ तथा १८ दिसम्बर '७९ को अभिनव थियेटर में 'नाट्य समारोह' का आयोजन किया गया। इस समारोह में भाग लेने वाली रंग-संस्थाओं द्वारा अभिनीत नाटकों का विवरण इस प्रकार है—

१. मोहन राकेश कृत	—**पैर तले की जमीन**	—दादा फाल्के कल्चरल सोसायटी
२. मोहन सिंह कृत	—**काला सूरज**	—डुग्गर नौजवान लिखारी मंच
३. धनंजय वैरागी कृत	— **रजनीगंधा**	—रूपवाणी कला मन्दिर
४. सुशील कुमार कृत	— **सिंहासन खाली है**	—जम्मू कला मन्दिर
५. मणी मधुकर कृत	—**दुलारी बाई**	—ऑल जे० एण्ड के० यूथ कल्चरल एसोसियेशन

यह बड़े संतोष की बात है कि अकादमी का प्रोत्साहन पाकर जहां रंग-संस्थाएं अभिनव प्रयोग करती हुई आधुनिकतम नाटकों को खेलने का साहस जुटा पा रही हैं वहीं जम्मू में नाटक के दर्शकों का एक ऐसा वर्ग भी तैयार हो गया है जो किसी भी कीमत पर नाटक देखने को लालायित रहता है।

- बच्चों के अंतर्राष्ट्रीय वर्ष की समाप्ति के अवसर पर अकादमी की ओर से बच्चों के लिए, बच्चों के द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले एक विशेष कार्यक्रम—**गुलदस्ता**—का आयोजन २ जनवरी, १९८० को अभिनव थियेटर में किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता भूतपूर्व संसद-सदस्या बेगम शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने की।

- १२ जनवरी, १९८० को अभिनव थियेटर में देश के जाने-माने कव्वाल शंकर-शम्भू ने कव्वालियों का अभूतपूर्व कार्यक्रम प्रस्तुत किया। अकादमी के तत्त्वावधान में इस प्रकार का कार्यक्रम पहली बार आयोजित किया गया था जिसकी जम्मू की जनता ने भरपूर सराहना की।

● १४ जनवरी, १९८० को अकादमी की आर्ट-गैलरी में एक 'अखिल जम्मू-कश्मीर कला प्रदर्शनी' का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन हकीम हबीबुल्लाह, अध्यक्ष, विधान-परिषद, जम्मू-कश्मीर ने किया। इस प्रदर्शनी में पुरस्कृत कलाकृतियों सहित लगभग ८० तैलं चित्र, रेखा चित्र, मूर्तिकला के नमूने आदि प्रदर्शित किए गए।

● २०-२१ जनवरी, १९८० को जम्मू में पहली बार अकादमी के तत्त्वावधान में अखिल भारतीय डोगरी लेखक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन श्री मुहम्मद शफी, राज्य शिक्षा मंत्री ने किया। इस सम्मेलन में निम्नांकित विषयों पर 'पत्र' पढ़े गये--

(क) डोगरी भाषा —निकास ते विकास —डॉ० बालकृष्ण शास्त्री
(ख) डोगरी नावल —इक जायज़ा —प्रो० अशोक जेरथ
(ग) डोगरी नाटक —इक परचोल —प्रो० नीलाम्बर देव शर्मा
(घ) कांगड़ी साहित्य—इक सर्वे —श्री गौतम व्यथित

इन पत्रों पर बाद में खुल कर चर्चा भी की गई।

इस अवसर पर आयोजित कहानी-गोष्ठी एवं कवि-सम्मेलन में जिन लेखकों ने भाग लिया उनका विवरण इस प्रकार है—

कहानी गोष्ठी

१. ठण्ड —डॉ० मनोज
२. किले दा कैदी —श्री चमन अरोड़ा
३. शुमारो लाल दा दुखांत —श्री छत्रपाल
४. मोए दा पक्खरू —श्री बन्धु शर्मा
५. जाल —श्री ओ० पी० शर्मा 'सारथी'
६. कीड़ा —प्रो० मदन मोहन शर्मा

कवि-सम्मेलन में भाग लेने वाले कवि—

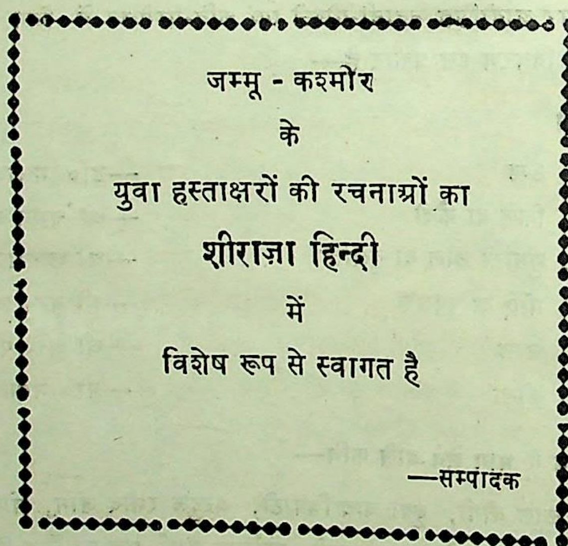
सर्वश्री चन्दू लाल योगी, दुनी चन्द त्रिपाठी, अब्दुल रशीद ज़ोन, मोहन सिंह, शमशेर सिंह, वीरेन्द्र केसर, गोगा राम साथी, पूर्णचन्द्र शर्मा, प्रद्युम्न सिंह जिन्द्राहिया, कुंवर वियोगी, कुलदीप सिंह जिन्द्राहिया, अश्विनी मंगोत्रा, पद्मदेव सिंह निर्दोष, मोहन लाल सपोलिया, नरसिंह देव जमवाल, यश शर्मा, वेदपाल 'दीप', केहरि सिंह मधुकर, रामलाल शर्मा, पीयूष गुलेरी, तथा दीनू भाई पंत।

बाल विशेषांक

इसी अवसर पर डोगरी भाषा में पहली बार बाल-साहित्य पर विशेष सामग्री से सुसज्जित शीराज़ा-डोगरी के बाल विशेषांक का विमोचन भी किया गया।

● २८ जनवरी, १९८० को गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में अकादमी की ओर से एक कुल हिन्द उर्दू मुशायरा करवाया गया जिसमें प्रदेश के साथ देश के भी जाने-माने उर्दू शायरों ने भाग लिया। इसकी अध्यक्षता 'गणतंत्र दिवस समारोह समिति' के अध्यक्ष शेख गुलाम मुहम्मद भद्रवाही, राज्यमंत्री, लोकल सेल्फ गवर्नमेंट ने की। इस मुशायरे में भाग लेने वालों में प्रमुख थे—सर्वश्री प्रेम कुमार नज़र, फना निज़ामी कानपुरी, हिलाल सियोहारवी, बशीर बदर, कैस जालन्धरी, राज़ नारायण राज़, हफीज़ मेरठी, मनमोहन तलख, मज़हर इमाम, सैफी सोपुरी, शुजा सुल्तान, मुहम्मद यासीन बेग, ऋषि पटियालवी, साहिर होशियारपुरी, शवाब ललित, जगन्नाथ आज़ाद, सरदार जाफरी, प्रितपाल सिंह बेताब, अर्श सहबाई, आबिद मनावरी, बेताब जयपुरी, मैकश कश्मीरी आदि।

————



आपकी बात

●

● शीराज़ा-४७ मिला। अभी उसे केवल उलट-पलट ही सका हूँ। 'आपकी बात' स्तम्भ के अंतर्गत प्रकाशित डॉ० ओम प्रकाश गुप्त के पत्र के संदर्भ में निवेदन है कि डॉ० गुप्त का यह कहना ठीक है कि 'इत्यलम्' (जनवरी-मार्च १९७९) तथा 'शीराज़ा'—४६ के अंकों में छपे मेरे लेखों के कुछ—अंश—पैराग्राफ्स मिलते हैं। इस प्रसंग में मैं कहना चाहूंगा कि (क) 'इत्यलम्' के लिए मैंने उसमें छपा लेख 'विचार कविता : व्यंग्य और विचार का समीकरण' मूलत: नहीं भेजा था। (ख) वह लेख मूलत: बलदेव वंशी की एक पुस्तक 'समकालीन कविता— विचार कविता' के लिए भेजा गया था— लगभग दो साल पहले। वह उसमें छप नहीं पाया था (ग) वह लेख 'समकालीन लेखन' का ही एक खंड था। उसके दो खंड करने पर कुछ अंश आवृत्ति पा गए हैं (घ) 'इत्यलम्'— में प्रकाशित लेख या उसके अंश पर कोई पारिश्रमिक नहीं लिया गया है। (ङ) विश्वास हैं इससे मेरी लेखकीय स्थिति अभ्रामक हो जाएगी। कृपया मेरा पत्र शीराज़ा के अंक ४८ में अवश्य ही प्रकाशित करेंगे।

—डॉ० चन्द्रशेखर

२२-बी, बचित्तर नगर, पटियाला

● कविता-अंक देखने को मिला। उत्सुकता से मैंने अंक की सभी रचनाएं पढ़ी हैं। अंक का विवेचन-पक्ष उत्तम है। अकविता के प्रसंग में जगदीश चतुर्वेदी ने और विचार कविता के सन्दर्भ में डॉ० हरदयाल ने अपनी बात स्पष्टता से प्रस्तुत की है। नयी कविता की भाषिक संरचना के सम्बन्ध में राज कुमार का लेख भी अच्छा है। आज की हिन्दी कविता के सम्बन्ध में कश्मीर के हिन्दी कवियों की परिचर्चा भी रोचक है। कश्मीर के हिन्दी कवि आज क्या सोच रहे हैं, इसकी प्रामाणिक जानकारी इस परिचर्चा से मुझे मिली।

अहिन्दी भाषी कश्मीर से हिन्दी की आधुनिक कविता के सम्बन्ध में आपने एक अच्छा अंक निकाला है, इसके लिए आप बधाई के पात्र हैं।

— जुगमन्दिर ताय

फ्रेण्ड्स कालोनी, अलवर—३०१००

● शीराज़ा का कवितांक मिला। धन्यवाद! शीराज़ा की लोकप्रियता बढ़ रही है इसका प्रमाण इसकी प्रकाशनावधि में परिवर्तन से हो जाता है। लेकिन लोकप्रियता और सार्थकता में सामंजस्य ही रचना को महान बनाता है। और कालजयी रचनाएं होती हैं जो इन दोनों कसौटियों पर खरी उतरती हैं। मैं तुम्हारी बात से यहां तक सहमत हूँ कि कोई आन्दोलन अथवा पार्टी किसी रचनाकार को स्थापित नहीं कर सकती, किन्तु क्या वह मात्र स्थापित होने के लिए संघर्षरत है? उसका सामाजिक रूपान्तरण में कोई योगदान नहीं? मेरे विचार में उन दोनों तरह के कवियों का जायज़ा लेना जरूरी है जो हर बदलती हुई सरकार की कुर्सी के पाए हैं और जो तात्कालिक हैं। वे अब भी पैंतरे बदल कर स्थिति को भुनाने की कोशिश कर होंगे—नाम इस लिए नहीं लूंगा कि तुम सम्पादक हो और तुम्हारी पहचान मुझसे विस्तृत और पैनी होगी।

—केवल गोस्वा

३५/६, पंत नगर, जंगपुरा, नयी दिल्

● इस अंक में लेख कविताओं से अधिक ज़ोरदार रहे। कविताओं का स्तर हल्का-फी है। इस अंक में जो 'आज की कविता' पर परिचर्चा है उसे पढ़कर निराशा हु इसमें भाग लेने वाले सभी कवि हैं और खेद है कि वे आज की कविता की दिशा दशा का निर्धारण नहीं कर सके। कोई स्पष्ट ध्येय परिचर्चा का उनके सामने रहा—कम से कम यह स्पष्ट है; जो अपनी बात कहता दूसरा उसी में से कोई शब्द अपनी राय व्यक्त करता। परिचर्चा किधर जा रही है इसे ध्यान में नहीं रखा गया जम्मू-कश्मीर में हिन्दी कविता की क्या दशा-दिशा है—डॉ० शर्मा की इस बात भी किसी ने पकड़ने, आगे बढ़ाने का प्रयास नहीं किया।

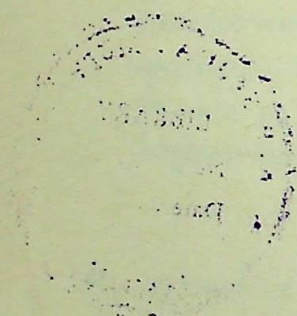
—डॉ० निज़ामु

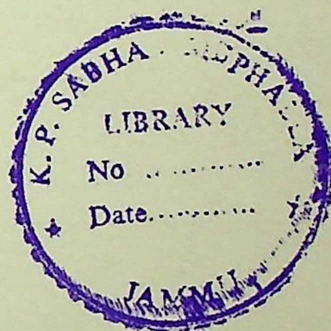
इस्लामिया कालेज, श्री

● कवितांक उपयोगी लगा। सामग्री पठनीय है और सम्पादकीय श्रम इसमें झलकता आज किसी एक विषय पर सामग्री जुटा पाना कितना कठिन है, यह मैं जानता शीराज़ा हिन्दी ने यह सफलता प्राप्त की है—सो बधाई। त्रैमासिक की जगह पर द्वैमासिक हो गयी, अच्छा है।

— फूल चन्द मा

बी-३०, सिविल स्टेशन, भटिन्डा—१५१





R. No. : 28871/76 Sheeraza Hindi (Bi-monthly) January, 1980



A Publication of :
J&K Academy of Art, Culture & Languages, Jammu.
Printed at : Amar Art Press, Moti Bazar, Jammu